द्वितीय अध्याय

नाट्यशास्त्र में दिए गए आंगिक अभिनय का वर्णन

सम्पूर्ण मानव सभ्यता के इतिहास तथा विकास में अभिनय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गयी है। प्रसिद्ध इतिहासकारों के भिन्न–भिन्न प्रकार के उल्लेखों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अभिनय का उद्‌गम एवं इतिहास सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही आरम्भ हुआ था। इतिहास के पन्ने पलटते ही आदिम जाति के समय जब मनुष्य इस धरती पर अपनी नींव रखने की कोशिश में थे तब उन्होंने सबसे पहले अभिनय का ही सहारा लेकर अपने मनोभावों को व्यक्त करना आरम्भ कर दिया था। मनुष्य की उत्सुकता दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई और वह नये–नये भावों, संकेतों के माध्यम से कला का सृजन करने लगे। जब मनुष्य प्रकृति को समझने लगा था और धीरे–धीरे प्रकृति के साथ खुद को जोड़ने लगा, आदिमानव जाति अपने छोटे–छोटे समूह बनाकर रात्रि बेला में अग्नि जला कर उसकी परिक्रमा करते, अपने हाथ–पैर फेंकते और अभिनय के माध्यम से अपने भावों को प्रकट करने की सहज चेष्टा करते। मानव जाति की सभ्यता एवं संस्कृति का जैसे–जैसे विकास होता गया, उनके द्वारा विविध प्रकार से अपनाये गये भिन्न–भिन्न अभिनय प्रतीक भी परिवर्तित एवं परिष्कृत होते गये। प्राचीन काल के प्रागैतिहासिक युग की विभिन्न गुफाओं एवं चट्‌टानों में अंकित मानव आकृति से यह स्पष्ट होता है कि उस युग में भी अभिनय स्पष्ट रूप से विद्यमान था। प्राचीन मानव सभ्यता

से ही अभिनय कला का अवलोकन हो गया था। पुरातत्वविदों के निष्कर्ष कि मानें तो मनुष्य अभिनय कला के प्रति जागरूक तो था ही, साथ ही साथ इतिहासकारों द्वारा भी यह बताया गया है कि जैसे–जैसे मानव विकास की ओर बढ़ा वैसे–वैसे अभिनय में भी परिवर्तन होते गए। यही नहीं हमारे प्राचीन भारतीय वैदिक वाङ्मय में भी इनकी स्पष्ट रूप में पुष्टि मिलती है।

आचार्य भरत मुनि अपने नाट्यशास्त्र में अभिनय शब्द का अर्थ समझाते हुए लिखते हैं कि ''अभिनय के द्योतक'' यह शब्द संस्कृत भाषा की ''नय्' धातु से बना है, जिसमें 'अभि' उपसर्ग को ''णीञ'' धातु से ''अच्'' प्रत्यय लगाने से अभिनय शब्द की निष्पत्ति होती है। अभिनय शब्द में अभि का अर्थ है–''की ओर'' एवं नय का अर्थ है– ''ले जाना'', इस प्रकार अभिनय का अर्थ हुआ प्रमुख नाटककार अथवा नाट्यभिनय कर्ता के मनोभावों की ओर ले जाना। इसी संदर्भ में आचार्य भरत मुनि द्वारा उल्लेखित श्लोक इस प्रकार है–

अभिपूर्वस्य णीञ् धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये।

यस्मात् प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।[1]

नृत्य में अभिनय का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। वैसे तो आम दर्शकों के अनुसार सुन्दर आभूषण पहनकर मंच पर किसी कथा को नकली हाव–भाव से प्रदर्शन करना ही अभिनय है परंतु बाहरी चेष्टाओं के साथ मन के भावों को भी व्यक्त करते हुए अभिनेता अभिनय करता है और श्रोताओं

[1] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 8, श्लोक सं0 सं0 6

तक अपनी भावनाएँ पहुँचाता है यही अभिनय है। समस्त चराचर जगत में विद्यमान मानव जाति की जीवन शैली, भाषा, अपनी अन्तर्मन की भावनाएँ, शारीरिक व्यवहार, अभिव्यक्ति आदि की समालोचन कर शास्त्रकारों ने अभिनय के मुख्य चार प्रकार के भेद का उल्लेख किया है–आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। विद्वानों के मत अनुसार यही चार प्रकार के अभिनयों के माध्यम से संगीत विद्या प्रख्यात हुई है। अभिनय दर्पण एवं नाट्यशास्त्र में भी इसे सहमति प्रदान की है। आचार्य नन्दिकेश्वर जी के आधार पर यही चारों अभिनय के सोपादक भगवान शिव हैं, यहाँ तक कि नन्दिकेश्वर जी के अभिनय दर्पण में उन्होंने पहले ध्यान श्लोक में ही शिव की आराधना करते हुए लिखा है।

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्गमयम्।

आहार्यं चन्द्र तारादि तमः नुमः सात्त्विकं शिवम्।। [2]

इस ध्यान श्लोक में चारों अभिनयों को भगवान शंकर, नटराज से सम्बोधित किया गया है। उनके पूरे शरीर को सृष्टि बताते हुए आंगिक अभिनय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बोली जाने वाली भाषा जिनका वाचिक अभिनय है, उन्होंने आभूषण में चन्द्र और तारे धारण किये हैं, जो आहार्य अभिनय है तथा वे जो स्वयं सात्विक शिव है उन्हें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार भगवान नटराज में यह चारों अभिनय समाविष्ट हैं, या यह भी कहा जा सकता है कि शिव जी से ही यह प्रकट हुए हैं। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय, नाट्यशास्त्र एवं अन्य ग्रन्थों के साथ–साथ रामायण में रथाश्च जन संबाधा

[2] अभिनय दर्पण, पृष्ठ सं0–15, 1/1, संगीत रत्नाकर 7/1

नटनर्तक संकुला,[3] महाभारत में ''कौबेर–रम्भाभिसार'' नामक नाटक का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'ललित विस्तार' में विभिन्न कलाओं का उल्लेख स्पष्ट रूप में प्राप्त होता है, जो संगीत नृत्य के साथ–साथ अभिनय कला का द्योतक है।[4]

यह अभिनय का विषय अत्यन्त विशाल एवं गहरा है, जिस पर कई सारे शोध हो चुके हैं और वर्तमान समय में हो भी रहे हैं, परन्तु हम जितना इस विषय को समझने की कोशिश करते जाते हैं उतना ही उसमें समाहित होते जाते हैं। इन्हीं चार अभिनयों में से एक अभिनय है आंगिक अभिनय जिस पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

आंगिक अभिनय :–

आंगिक अभिनय के सम्बन्ध में सर्वप्रथम आचार्य नन्दिकेश्वर लिखते हैं– **''तत्र आंगिको अंगनिदर्शित''** जिसका शाब्दिक अर्थ अभिनय भेदों में शरीर के विभिन्न अंग संचालन द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले नृत्य को आंगिक अभिनय कहते हैं।[5]

आंगिक अभिनय को लेकर बहुत सारे विचार रखे गए हैं, परन्तु सभी का निष्कर्ष यही निकलता है कि मनुष्य के द्वारा किए गए कोई भी अंग संचालन हो या भाव मुद्राओं द्वारा भाव प्रकट किया गया हो उसे आंगिक अभिनय कहा जाता है।

---

[3] रामायण 1/5/12

[4] डॉ0 पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ0सं0 6

[5] वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृ0सं0 199

आंगिक अभिनय जैसा कि शब्द में ही स्पष्ट है ''अंग'' द्वारा किया जाने वाला। मनुष्य अपने शारीरिक अंगों द्वारा जो भी चेष्टा करता है, चाहे वह हाथ–पैर का हिलाना ही क्यों न हो उसे आंगिक अभिनय कहा गया है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि जी ने इसके विषय में विस्तारपूर्वक बतलाते हुए आंगिक अभिनय के मुख्य तीन प्रकार बताए हैं –

1. **शरीरज** :– जिसमें शरीर के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में बताया गया है।
2. **मुखज** :– जिसमें मुख के छोटे–छोटे भाग को बताया गया है।
3. **चेष्टाकृत** :– जिसमें मुद्राओं द्वारा चेष्टा कर के अभिनय करने के सम्बन्ध में बताया गया है।

''त्रिविधस्त्वाङ्गिको ज्ञेयः शारीरो मुखजस्तथा।

तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखाङ्गोपाङ्गसंयुतः।'' [6]

मनुष्य के शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों का अपना अलग महत्व है। छोटे–छोटे अंग संचालन नृत्य अभिनय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिस प्रकार छोटी–छोटी बूंद को मिला कर एक विशाल समुद्र का स्वरूप बनता है उसी प्रकार अंगों के छोटे–छोटे समूह के माध्यम से अभिनय एवं भावों को सुसज्जित किया जाता है।

''शारीरज, मुखज तथा चेष्टाकृत''[7]

---

[6] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 8, श्लोक सं0 11, पृ0सं0 5

[7] वही

1. **शरीरज** :– नाट्यशास्त्र में शरीर से किये जाने वाले अभिनय में निम्न अंग प्रमुख हैं जैसे– शिर, पैर, हाथ, वक्ष, कटि, पार्श्व से किये जाने वाले अभिनय को शरीरज कहा जाता है। इन्हें हम अंग के नाम से सम्बोधन करते हैं।

2. **मुखज** :– चेहरे से किये जाने वाले अभिनय जिसे हम उपांग के नाम से सम्बोधित करते हैं–मुखज में प्रयोग होने वाले छोटे–छोटे उपांग जैसे–आँख, कान, भौंहे, अधर, कपोल और ठोडी (दाढ़ी) आदि की विभिन्न चेष्टाओं द्वारा किया जाने वाला अभिनय है।

3. **चेष्टाकृत** :– शरीर के विभिन्न क्रियाओं द्वारा किये जाने वाले चेष्टाओं को चेष्टाकृत अभिनय कहा गया है जैसे कि व्यक्ति की नकल करना–लूले, लंगड़े, बौने आदि का अभिनय। इसे आचार्य नन्दिकेश्वर जी ने प्रत्यांग के नाम से सम्बोधित किया है।

महर्षि भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र में आंगिक अभिनय के दो साधन बताए गए हैं–अंग और उपांग।

भरतमुनि जी ने आंगिक अभिनय के छः अंग बताए हैं और अन्य शास्त्रकारों का भी यही मानना है, परन्तु कुछ विद्वानों का आपसी मतभेद है कि अंग सात हैं जिसमें ग्रीवा भी जुड़ा हुआ है, परन्तु इसकी पूर्ण रूप से पुष्टि नहीं हो सकी है, अतः मेरे द्वारा नाट्यशास्त्र के अनुसार छः अंगों को अपने इस शोध प्रबन्ध में समाहित करने की कोशिश की गयी है।

1. शिर
2. हस्त

3. वक्ष स्थल

4. कटि

5. पार्श्व

6. पाद

(i) भरतमुनि के अनुसार शिर के 13 भेद बतायें गए हैं, जो इस प्रकार हैं –

आकम्पितं कम्पितञ्च धुतं विधुतमेव च।

परिवाहितमाधूतमवधूतं तथाञ्चितम्।।

निहिञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तञ्चात्यधोगतम्।

लोलितञ्चेति विज्ञयं त्रयोदशविधं शिरः।।[8]

1. **आकम्पित** – सिर/मस्तक को धीरे–धीरे ऊपर–नीचे की ओर हिलाने को आकम्पित कहते हैं। उदाहरण–किसी बात को स्वीकार करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

2. **कम्पित –** आकम्पित के समान ही कम्पित को किया जाता है, परन्तु इसमें शिर की क्रिया को बार–बार दोहराया जाता है और लय को बढ़ा (द्रुत गति) दिया जाता है जिसको कम्पित कहते हैं।

3. **धुतं–** मस्तक को दोनों पार्श्व में धीरे–धीरे हिलाया जाए तो धुतं कहलाता है। किसी बात को अपनी असहमति प्रदर्शित करने के लिए इसकी प्रस्तुति की जाती है।

---

[8] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 8, श्लोक सं0 17–18, पृ0सं0 5

4. **विधुत**–धुत के समान ही विधुत है परन्तु इसी क्रिया को द्रुत गति में किया जाए तो विधुत कहलाता है, उदाहरण–किसी बात का भय दर्शाने के लिए, ठण्ड लगने के लिए जिस प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है उसे विधुत कहा जाता है।

5. **परिवाहित** – दोनों कन्धों की ओर सिर को क्रम से झुकाया जाए तो परिवाहित होता है।

6. **उद्वाहितक**– मस्तक को तिरछी ओर करके ऊपर की ओर फिर एक तरफ कम्पित जैसी क्रिया की जाए तो उद्वाहितक होता है।

7. **अवधुत**–मस्तक को नीचे झुकाते हुए प्रदर्शन किया जाए तो अवधुत भेद होता है, जैसे किसी देवता को शीश झुकाकर प्रार्थना करने के सन्दर्भ में इसकी प्रस्तुति की जाती है।

8. **अञ्चित**– मस्तक को एक तरफ गर्दन से झुका दिया जाए तो अंचित शिरोभेद होता है जैसे कि मृत या सोच में डूबे व्यक्ति को दर्शाने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

9. **निकुंचित/निहञ्चित** – कन्धों को ऊपर फैलाते हुए तथा ग्रीवा को सिकोड़ते हुए सिर की अवस्था रखी जाए तो वह निकुंचित भेद होता है।

10. **परावृत्त**–पूरे सिर को एक गोल भाग में घुमाया जाए तो यह परावृत्त भेद कहलाता है।

11. **उत्क्षिप्त**–सिर के ऊपर आकाश की तरफ देखने के भाव को प्रदर्शित किया जाय तो वह उत्क्षिप्त भेद कहलाता है।

12. **अधोगत** – सिर को पूरी तरह नीचे की ओर झुका लेने से अधोगत भेद कहलाता है, जैसे–शर्मिन्दगी महसूस करते समय, स्त्री की लज्जा अवस्था को दिखाने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

13. **लोलित**– मस्तक को गोल स्थिति में चारों ओर घुमाते हुए इसका प्रदर्शन किया जाए तो लोलित भेद होता है, जैसे–मूर्च्छा, किसी देवी का आवाहन होना इत्यादि के प्रदर्शन के लिए लोलित किया जा सकता है।

(ii) हस्त :–

अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
कटकावर्धमानश्चह्युत्सङ्गो निषधस्तथा।।
दोला पुष्पपटश्चैव तथा मकर एव च।
गजदन्तोऽवहित्थश्च वर्धमानस्तथैव च।।
एते तु संयुक्ता हस्ता मया प्रोक्तास्त्रयोदश।। [9]

अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटकावर्धमानक, उत्संग, निषध, दोला, पुष्पपुट, मकर, गजदन्त, अवहित्थ, वर्धमान आदि।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में दो प्रकार की हस्तमुद्राओं का उल्लेख किया है, इसमें आवश्यक यह है कि मुद्राओं का क्या प्रयोग है और यह क्यों आवश्यक मानी गई हैं, यह मुद्राएँ नृत्य और करणों के प्राण के समान होती हैं। जिस प्रकार हमारी भाषा है हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी इत्यादि

[9] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 9, श्लोक सं0 8–10, पृ0सं0 38–39

उसी प्रकार नृत्य में मुद्राओं की भाषा का महत्व प्रदान किया गया है, इसके माध्यम से हमें अपनी कथा, व्यथा, अभिनय में सहयोग प्रदान कर नर्तकी के भावों को समझने में सरलता होती है। भरतमुनि ने इन्हें दो भागों में विभाजित किया है संयुक्त हस्त मुद्रा एवं असंयुक्त हस्त मुद्रा।[10]

(iii) वक्ष स्थल :– नाट्यशास्त्र में वक्ष के 5 प्रकार बतलाए गए हैं :–

''आभुग्नमथ निर्भुग्नं तथा चैव प्रकम्पितम्।
उद्वाहितं समुश्चैव उरः पञ्चविधं स्मृतम।।'' [11]

1. **आभुग्न** :– सम पाद में स्थित होकर, कन्धे झुके हुए हों, पीठ सीधी हो तो आभुग्न उर/वक्ष कहलाता है। इसे–भय, शोक, व्याधि के लिए प्रयोग किया जाता है।
2. **निर्भुग्न** :– वक्ष स्थल सीधा हो, पीठ झुकी हुई हो, कन्धे को उठा कर रखा गया हो तो उसे निर्भुग्न उर कहते हैं, जैसे–मान, हजम, सत्यवचन इत्यादि।
3. **प्रकम्पित** :– वक्ष स्थल का क्रम से ऊपर–नीचे कम्पन हो तो प्रकम्पित होता है।
4. **उद्वाहित** :– पैरों को थोड़ी दूरी पर रख कर पीछे की ओर कटि से पीछे झुके एवं वक्ष स्थल को ऊपर की तरफ रखें तो उसे उद्वाहितं कहते हैं।
5. **सम्** :– समान स्थिति में रखे हुए अंगों के विन्यास से सम उर स्थिति होती है।

---

[10] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 9, श्लोक सं0 4–10, पृ0सं0 37–39

[11] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 10, श्लोक सं0 1

(iv) **कटि** :– भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कटि के 5 प्रकार कुछ इस तरह बताए हैं – चिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता, उद्वाहिता।

''चिन्ना चैव निवृता च रेचिता कम्पिता तथा।
उद्वाहिता चेति कटी नाट्ये नृत्ते च पञ्चधा।।'' [12]

1. **चिन्ना** :– इसमें बाएं पैर के पंजे को स्थापित कर कटि को 180° में गोल पीछे की ओर घुमाते हैं।

2. **निवृत्ता** :– इसमें बाएं पैर के पंजे को स्थापित कर कटि को 180° में गोल आगे की ओर घुमाते हैं।

3. **रेचिता** :– सम् पाद में स्थिर हो कर कटि को गोल पीछे घुमाते हैं– दायें से बायें तथा बाँयें से दायें।

4. **कम्पिता** :– इसमें कटि को आगे और पीछे की तरफ ले जाते हैं।

5. **उद्वाहिता** :– इसमें कटि दायें एवं बायें की तरफ ले जाते हैं अर्थात् कटि को बाहर की तरफ निकालते हैं।

(v) **पार्श्व** :– पार्श्व को नृत्य में अत्यन्त ही सहायक अंग माना गया है। नाट्शास्त्र के अनुसार ये 5 प्रकार के होते हैं–नत, समुन्नत प्रसारित, विवर्तित एवं अपसृत।[13]

''नतं समुन्नतञ्चैव प्रसारितविवर्तिते।
तथापसृतमेवन्तु पार्श्वयोः कर्म पञ्चधा।।'' [14]

---

[12] वही, श्लोक सं0 21

[13] वही

[14] वही, अध्याय 10, श्लोक सं0 11, पृ0सं0 85

1. **नत** :– इसमें पार्श्व से दोनों तरफ झुकते हैं बायें तथा दाहिने, जैसे–तूफान के पश्चात् पेड़ों का झुकाव होता है।

2. **समुन्नत** :– इसमें पार्श्व को क्रम से दायें से बायें की ओर ऊपर की तरफ उठाते हैं।

3. **प्रसारित** :– इसमें पार्श्व को दोनों ही तरफ बाहर की तरफ निकालते हैं, जैसे–किसी नाटक में नर्तकी मटक–मटक कर चलने का अभिनय कर रही हो।

4. **विवर्तित** :– इसमें पार्श्व से अपने दाहिनी ओर पीछे की तरफ घुमते हैं।

5. **अपसृत** :– इसमें पार्श्व को पुनः अपनी जगह सामने लेते हैं।

(vi) **पाद** :– दोनों पैर से किये जाने वाले 5 भेद बताएं गए हैं–उद्वाहित, सम, अग्रतल संचर, अंचित और कुंचित।

''उद्घट्टितः समश्चैव तथाग्रतलसञ्चारः।

अञ्चितः कुञ्चितश्चैव पादः पञ्चविध स्मृतः।।'' [15]

1. **उद्वाहित** :– यदि पैर के निचले स्तर को स्थिर अवस्था में रख कर केवल एड़ी को भूमि पर पटके उसे उद्वाहित पाद कहा जाता है।

2. **सम** :– सामान्य रूप से पूरे पैर को समतल स्थिति में भूमि पर मारना सम पाद कहलाता है।

---

[15] वही, श्लोक सं0–50

3. **अग्रतल संचर** :– घुटना बाहर की ओर हो, ऐड़ी उठी हो और शरीर का भार पंजे पर हो जो क्रम से भूमि पर मारा जाए तो वह अग्रतल पाद होता है।

4. **अंचित** :– एड़ी भूमि पर हो और समस्त अंगुलियाँ अंचित हो और पैर सामने की तरफ अग्रतल हो तो अंचित पाद होता है।

5. **कुंचित** :– यदि एड़ी ऊपर उठी हो और पंजे कुंचित अवस्था में हो तो कुंचित पाद होता है।

''आभुग्नमथ निर्भुग्नं तथा चैव प्रकम्पितम्।
उद्वाहितं समुश्चैव उरः पञ्चविधं स्मृतम्।।'' [16]

2. **उपांग** :–

प्रकृति ने जब मनुष्य को जीवन प्राण स्वरूप प्रदान किया, उसी प्राण में भाव और रस की अनुभूति उपहार स्वरूप दिया, जिसके माध्यम से हम एक–दूसरे की भावनाओं को स्पष्ट रूप से समझने में सफल हो सके। मनुष्य का शरीर नदी के समान प्रवाहमान होता है और उसके मन में उठने वाले भाव मानों जैसे नदी में पत्थर फेंकने से उठने वाली पानी की लहरों के समान होते है और इन भावों को स्पष्ट करने में मुखाभिनय मुख्य रूप से सहायता प्रदान करता है। जब मनुष्य के हृदय में भाव की लहरें उमड़ आती हैं, तो उसकी रेखाएं मुख पर अंकित होती है। सभी मनुष्य की शरीरज बनावट अलग–अलग होती है और किसी भी परिस्थिति को दर्शाने के लिए भिन्न–भिन्न आंगिक क्रियाओं के साथ छोटे–छोटे उपांगों का महत्व

[16] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 10, श्लोक सं0 1

और बढ़ जाता है। इन उपांगों में नेत्र, भ्रू, नास्य, अधर कपोल, चिबुक आदि मुख्य रूप से माने जाते हैं।।''[17]

नाट्यशास्त्र के अनुसार नेत्र के 36 प्रकार होते हैं। भरत जी ने नेत्रों के सबसे ज्यादा प्रकार बताते हुए ये भी समझाया है कि जब हमारे पास वाचिक अभिनय का प्रयोग ना हो तो नेत्र एवं मुद्राओं से ही अपने अभिनय को स्थापित किया जाता है। वाचिक अभिनय में भाषाएँ तो बदल जाती हैं, इस संसार में प्रत्येक मनुष्य को सभी भाषाओं का ज्ञान हो यह जरूरी नहीं परन्तु अभिनय एक ऐसी भाषा है जो इस जगत में निवास करने वाले हर मनुष्य के मन–मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। दृष्टि के माध्यम से अपने भाव को स्पष्ट करने की कला को ही अभिनय कहते हैं।

नाट्यशास्त्र में दृष्टि को तीन भागों में बताया गया है –

1. रस दृष्टि
2. स्थायी भाव दृष्टि
3. व्यभिचारी भाव दृष्टि

उपर लिखित दृष्टि के तीन भागों के अन्तर्गत जिसमें 8 रस दृष्टि भेद बताए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं–

''क्रान्ता भयानका हास्या करूणा चाद्भूता तथा।

रौद्री वीरा च बीभत्सा विज्ञेया रसदृष्टयः।।'' [18]

---

[17] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, हिन्दी नाट्यशास्त्र, भाग–2, पृ0सं0 02

[18] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 8, श्लोक सं0 38, पृ0सं0 11

1. क्रान्ता, 2. भयानका, 3. हास्या, 4. करूणा, 5. अद्भुत, 6. रौद्री, 7. वीरा, 8. बीभत्स आदि।

इसी प्रकार 8 स्थायी भाव के प्रकार भी बताए गए हैं –स्निग्धा, ह्रष्टा, दीना, क्रुद्धा, तृप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता, विस्मिता।

ये आठों दृष्टि भेद रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा और आश्चर्य के अलग–अलग अभिनय को प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं।

3. इसी प्रकार व्यभिचारी दृष्टि भेद 20 प्रकार के बताए गए हैं–

1. शून्या, 2. मलिना, 3. श्रान्ता, 4. लज्जिता, 5. ग्लाना, 6. शंकिता, 7. विषण्णा, 8. मुकुला, 9. कुञ्चिता, 10. अभितप्ता, 11. जिह्वा, 12. ललिता, 13. वितर्किता, 14. अर्धमुकुला, 15. विभ्रान्ता, 16. विलुप्ता, 17. आकेकरा, 18. विकोशा, 19. त्रस्ता, 20. मदिरा

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में 8 रस दृष्टि भेद, 8 स्थायी भाव दृष्टि भेद और 20 व्यभिचारी दृष्टि भेद का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार कुल 36 प्रकार के दृष्टि भेद का परिचय दिया गया है। उन्हीं दृष्टि भेदों के प्रयोग से भिन्न–भिन्न रसों का स्वादाभिषेक होता है। विभिन्न शास्त्रकारों के अनुसार किसी ने 8 तो किसी ने 9 दृष्टि को बताया है, परन्तु अधिकतर विद्वानों ने नाट्यशास्त्र एवं भरत मुनि से सहमति रखते हुए अपने अध्यायों में 36 दृष्टि भेदों को सम्मिलित किया है।

भ्रुकुटिकर्म :–

''कार्यानुगतमस्यैव भ्रुवो: कर्म निबोधत।
उत्क्षेप: पातन श्चैव भ्रुकुटी चतुरन्तथा भ्रुवो:।।
कुञ्चितं रेचितंञ्चैव सहजच्चेति सप्तधा।'' [19]

आचार्य भरत ने दृष्टि के बाद अपने नाट्यशास्त्र में भ्रुकुटि का उल्लेख किया है। किसी भी अभिनय को दर्शाते समय आँखें तो अभिनय प्रस्तुत करती ही है परन्तु भ्रुकुटि के प्रयोग से वह अभिनय और भी स्पष्ट हो जाता है, हमारे मुखाभिनय में दृष्टि जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही भ्रुकुटि सहायक होती है। भरत ने भ्रुकुटि के 7 भेद बताए हैं–उत्क्षेप, पातन, भ्रुकुटी, चतुर, कुंचित, रेचित, सहज।

नासाकर्म :–

आचार्य भरत के नासिका की महत्वता एवं उसके प्रयोग नाट्यशास्त्र में बतलाये हैं। नासा के 6 भेद बताए गए हैं।

1. **नता :–** नासा के बार–बार फूला–पिचकाने को नता कहा गया है।
2. **मन्दा :–** सामान्य से अधिक फुला हुआ हो तो मन्दा नासा होता है।
3. **विकृष्टा :–** नासा से वायु को खींचने से विकृष्टा नासा होता है।
4. **सोच्छवासा :–** नासा को सिकुड़ने पर सोच्छावास नासा कहते हैं।
5. **विकूणिता :–** नाक को/नासापुट सिकुड़े हों तो विकूणिता कहते हैं।

---

[19] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 8, श्लोक सं0 117, पृ0सं0 25

6. **स्वाभाविका :–** सामान्य स्थिति होने पर स्वाभाविका नासा होता है।

अधर :–

अधरोष्ठकर्म अभिनय का एक माध्यम है जिसमें वाचिक न होते हुए भी भाव प्रकट हो ही जाते हैं। वैसे तो नृत्य में अधर का प्रयोग प्रसन्न मुख मुद्रा या कुछ भाव प्रकट करते समय ही होता है। नाट्यशास्त्र में अधरोष्ठकर्म के 6 भेद बतलाये गये हैं–विवर्तन, कम्पन, विसर्ग, विनिगूहन, सन्दष्टक, समुद्ग।

कपोलकर्म :–

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को अत्यन्त विकसित स्वरूप में लिखा है। कपोल का भी महत्व बताते हुए इसके 6 प्रकार बताए गए हैं, ज्यादातर कथकली एवं नाटकों में कपोल का प्रयोग अधिक मात्रा में देखने को प्राप्त होता है। कपोल के 6 प्रकार यह हैं – क्षाम, फुल्ल, पूर्ण, कम्पित, कुञ्चित, सम।

चिबुक :–

नाट्यशास्त्र में चिबुककर्म का प्रयोग बताते हुए उसके प्रयोग के लक्षण भी समझाए गए है। भरत ने नाट्यशास्त्र में अभिनय के अन्तर्गत 7 प्रकार बताए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं –

1. **कुट्टन :–** कुट्टन जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कुटना परन्तु यहाँ दांतों से कुटकुटाने के अभिनय को कुट्टन कहा जाता है।

जैसे–ठण्ड लगने का अभिनय करते समय कुट्टनकर्म का प्रयोग किया जाता है।

2. **खण्डन** :– भरत ने खण्डन को समझाते हुए कहा है कि दाँतों से बार–बार चबाने का अभिनय करने को खण्डन कहते हैं, जैसे–गाय के जुगाली करने के अभिनय में खण्डन का प्रयोग किया जाता है।

3. **छिन्न** :– छिन्न का प्रयोग बताते हुए भरत मुनि ने कहा है कि बहुत जोर से दांतों को एक दूसरे पर रखना छिन्न कहा जाता है, जैसे क्रोध करते समय दृढ़ता से दांतों को पीसना।

4. **चुक्कित** :– चुक्कित का अभिनय मंच पर करते समय दांतो के बीच में जगह बना लेते हैं, जैसे श्रीकृष्ण ने अपना मुख खोल दिया था।

5. **लेहित** :– लेहित चिबुक का अभिनय करते समय दांतों के बीच जीभ का आना बताया जाता है, जैसे–किसी व्यक्ति से कोई भूल होने पर वह दाँतों से जीभा को काट कर दर्शाता है, उसे लेहित कहा गया है।

6. **सम** :– उपर तथा नीचे के दांतों को मिलाने से सम होता है।

7. **दष्ट** :– दष्ट अभिनय को नृत्य में प्रयोग करना थोड़ा असामान्य माना गया है। इसमें दाँतों से होंठों को (अधर) काटने का दृश्य अभिनीत किया गया है। जैसे–श्रृंगार रस का अभिनय करते समय नायक को आकर्षित करने के लिए नायिका दष्ट चिबुक का अभिनय प्रस्तुत करती है। प्रसिद्ध नृत्यांगना रूक्मिणी देवी जी ने भरतनाट्यम् नृत्य में इसे प्रतिबन्धित किया है।

इस प्रकार उपांग के 6 भेदों को अत्यंत विस्तृत रूप से नाट्यशास्त्र में इसके स्वरूपानुसार समझाया गया है। यह तो निश्चित हो गया है कि नाट्यशास्त्र का विस्तृत रूप दिया गया है, छोटे–छोटे अंगों, उपांगों को भी स्पष्ट स्वरूप प्रदान कर नृत्त, नाट्य, संगीत, चित्रकला आदि सभी कलाओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया है।

उदर –

''क्षामं खल्वञ्च पूर्णञ्च सम्प्रोक्तमुदरं त्रिधा।

तनु क्षामं नतं खल्वं पूर्णमाध्मातमुच्यते।।'' [20]

उदर के भेद और उसके लक्षण बताते हुए, उसके तीन भेद बतलाए गए हैं– 1. क्षाम, 2. खल्व, 3. पूर्ण

1. **क्षाम :–** उदर को पतला, सिकुड़ा हुआ दिखाने को क्षाम कहते हैं। नाट्य नृत्य में रोते हुए, हँसते हुए, मृत्यु का अभिनय करने के लिए क्षाम का अभिनय किया जाता है।

2. **खल्व :–** उदर को झटके से अन्दर खींचने की स्थिति को 'खल्व' कहते हैं, जैसे–बूढ़े बीमार व्यक्ति का अभिनय करते हुए, भूख–प्यास से थके हुए बुजुर्ग का अभिनय करते हुए, ऋषि–मुनि के तपस्या का अभिनय प्रस्तुत करते समय 'खल्व' का प्रयोग किया जाता है।

---

[20] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 10, श्लोक सं0 18

3. **पूर्ण** :– पूर्ण जैसे शब्द में पूरा साथ होता है उसी प्रकार उदर का भरपूर भरे हुए स्थिति को पूर्ण कहते हैं, जैसे–अतिरिक्त मात्रा में भोजन कर लेना, मोटापा दिखाने में पूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

उरू :– नाट्यशास्त्र में उरू का अर्थ पिंडलियाँ बताते हुए इसके 5 प्रकार बतलाए गए हैं :–

''कम्पनं वलनश्चैव स्तम्भनोद्धर्तने तथा।

विवर्तनञ्च पञ्चैवतान्यूरू–कर्माणि योजयेत्।।'' [21]

इस प्रकार 5 उरू के नाम हैं – 1. कम्पन, 2. वलन, 3. स्तम्भन, 4. उद्वर्तन, 5. विवर्तन

1. **कम्पन** :– पैरों के एड़ी या पंजे के बल कुट्टनम करते हुए चलने को कम्पन कहा जाता है। अभिनय में पात्रों के मंच पर आगमन के समय या भय उत्पन्न होने पर इस गति का प्रयोग किया जाता है।

2. **वलन** :– पैरों को खड़ा कर पिंडलियों की गति दिखाई जाएं तो 'वलन' कहा जाता है, जैसे–स्त्रियों की गति दिखाने के लिए अभिनय करना हो तो वलन किया जाता है।

3. **स्तम्भन** :– उरू में स्थिरता होने को स्तम्भन कहा जाता है, जैसे भय में डरे–डरे एक ही गति में अवसाद या भय होने का अभिनय करना उसे स्तम्भन कहते हैं।

---

[21] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 10, श्लोक सं0 27

4. **उद्वर्तन** :– पिंडलियों को सिकुड़ कर घुटनों को हिलाने का प्रयास करना उद्वर्तन कहलाता है, जैसे योग के समय इसका प्रयोग किया जाता है।

5. **विवर्तन** :– इसमें एड़ियों को अन्दर की ओर खींचने से पिंडलियों में सिकुड़न करने को विवर्तन कहते हैं।

जंघा :–

''आवर्तितं नतं क्षिप्तमुद्वाहितमथापि वा।

परिवृत्तं तथा चैव जङ्घा कर्माणि पञ्चधा।'' [22]

दोनों जंघा के बारे में बतलाते हुए नाट्यशास्त्र में इसके पाँच भेद भी बताए गए हैं – 1. आवर्तिता, 2. नत, 3. क्षिप्त, 4. उद्वाहित तथा 5. परिवृत्त।

1. **आवर्तित** :– एक पैर सीधा एवं दूसरा पैर पहले की तरफ अन्दर घुमाया जाए तो आवर्तित कहलाता है।

2. **नत** :– जंघा को दूसरे पैर की ओर सिकोड़ा जाए तो नत बनता है।

3. **क्षिप्त** :– जंघा को झटके के साथ सामने की ओर फेंका जाए तो क्षिप्त होता है।

4. **उद्वाहित** :– जंघा को ऊपर की ओर उठा कर पीछे की ओर घूमाकर रखा जाए तो उद्वाहित भेद बनता है।

5. **परिवृत्त** :– जंघा को पीछे की ओर मोड़ने को 'परिवृत्त' भेद कहते हैं।

---

[22] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 10, श्लोक सं0 33

नृत्त हस्त मुद्रा :–

नृत्त संगीत का एक भाग होने के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण अंग भी है। भारतीय वैदिक वाङ्मय में नृत्य का अनेकों जगह वर्णन प्राप्त होता है। भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र में भी नृत्त एवं हस्तों को प्रमुखता प्रदान करते हुए बताया गया है कि नृत्त के साथ–साथ उसके विभिन्न प्रकार जुड़े होते हैं जिससे नृत्त की सुन्दरता का पूर्ण रूप से रूपान्तरण होता है। यह स्वभाविक है कि नृत्त हस्त के साथ अंगों का चलन, पैरों की चारी, मुख, नेत्र, भ्रू का अभिनय किया जाता है जिससे नृत्य में आकर्षण उत्पन्न होता है। नृत्त हस्त मुद्रा अंगुलियों से विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं को दिखाया जाए उसे कहते हैं। इसका अर्थ तो नहीं होता परन्तु नृत्त में इसके प्रयोग से लावण्य की अनुभूति होती है। नाट्यशास्त्र में यह बतलाया गया है कि इन नृत्त हस्तों का प्रयोग ''करणों'' में किया जाता है एवं अभिनय में भी मिश्रित प्रयोग किया जाता है।

नृत्तहस्तों की प्रवृत्ति ऐसी है कि इसके उपयोग से शरीरज अंग की भाव–भंगिमाओं के साथ–साथ पैरों की क्रिया समेत लालित्यपूर्ण नृत्त उत्पन्न होता है। करण में नृत्त हस्त इसलिए प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि इसमें कोई अर्थ नहीं होते परन्तु लास्यपूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है और संयुक्त–असंयुक्त का प्रयोग अभिनय में किया जाता है क्योंकि इन हस्तों का अर्थ स्पष्ट होता है जो अभिनय में आवश्यक है।

नृत्त हस्त करने में मुख्यतः ध्यान देने वाली बात यह है कि इन हस्त मुद्रा को करते समय हाथ, पैर के साथ शरीर से भी क्रिया की जानी

चाहिए। पैरों को भी 5 प्रकार से संचालित किया जाता है–ऊपर, नीचे, दाहिने, बायें और सीधे की ओर पैर को उठा–उठा कर रखते हैं।

''नृत्तहस्तानतश्चोर्ध्वे गदतो में निबोधत।
चतुरस्त्रौ तथोद्वृत्तौ तथा तलमुखौ स्मृतौ।।११।।
'स्वस्तिकौ विप्रकीर्णौ चाप्यरालकटकामुखौ।
आविद्धवक्त्रौ सूच्यास्यौ रेचितावर्द्धरेचितौ।।१२।।
उत्तानवञ्चितौ चैव पल्लवो च तथा करौ।
नितम्बावपि विज्ञेयौ केशबन्धौ तथैव च।।१३।।
लताख्यौ च तथा प्रोक्तौ करिहस्तौ तथैव च।
पक्षवञ्चितकौ चैव पक्षप्रद्योतकौ तथा।
ज्ञेयौ गरुडपक्षौ च दण्डपक्षावत: परम्।।१४।।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ चैव पार्श्वमण्डलिनौ तथा।
उरोमण्डलिनौ चैव उर:पार्श्वार्धमण्डलौ।।१५।।
मुष्टिकस्वस्तिकौ चापि नलिनीपद्मकोशकौ।
अलपल्लवोल्बणौ च ललितौ वलितौ तथा।।१६।।'' [23]

नाट्यशास्त्र में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि नृत्तहस्तों का विशेष प्रयोग करणों में किया जाना चाहिए एवं अभिनय के साथ भी अर्थ को समझते हुए प्रयोग में लाना चाहिए।

अब नृत्त हस्तों के नाम एवं उनकी प्रयोग विधि इस प्रकार हैं।[24]

---

[23] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय 9, श्लोक सं0 11–16, पृ0सं0 40

नृत्त हस्त के नाम इस प्रकार है – नृत्तहस्त एक तथा दोनों हाथों से किये जा सकते हैं – 1. चतुरस्त्र, 2. उद्वृत्त, 3. तलमुख, 4. स्वस्तिक, 5. विप्रकीर्ण, 6. अरालकटकामुख, 7. आविद्धवक्र, 8. सूच्यास्य, 9. रेचित, 10. अर्धरेचित, 11. उत्तानवन्चित, 12. पल्लव, 13. नितम्ब, 14. केशबन्ध, 15. लता, 16. करिहस्त, 17. पक्षवंचितक, 18. पक्षप्रद्योतक, 19. गरूडपक्ष, 20. दण्डपक्ष, 21. ऊर्ध्वमण्डलिन्, 22. पार्श्वमण्डलिन्, 23. उरोमण्डली, 24. उरःपार्श्वमण्डली, 25. मुष्टिकस्वस्तिक, 26. नलिनीपद्मकोष, 27. अलपल्लव, 28. उल्बण, 29. ललित, 30. वलित

1. **चतुरस्त्र**–वक्ष स्थल के पास दोनों हाथों से कटकामुख हस्तमुद्रा बनाते हुए किया जाता है। यदि कटकामुख हस्त को दोनों हाथों में पकड़कर उसे वक्ष स्थल के सामने की ओर रखा जाए तथा उसे घुमाकर रखने पर चतुरस्त्र हस्त क्रिया किया जाता है।
2. **उद्वृत्त**–दो हंसपक्ष हस्त को हिलाते हुए उद्वृत्त नृत्त हस्त किया जाता है, जिसे अन्य तालवृन्दक नाम से भी जाना जाता है। यदि हम दोनों हाथों में हंसपक्ष हस्त का उपयोग करें जिसमें हाथों का तल ऊपर की तरफ रखे जाने पर भी उद्वृत्त हस्त किया जाता है।
3. **तलमुख**–हाथों को हंसपक्ष रखते हुए चतुरस्त्र स्थिति में रखकर घुमा लिया जाए तब तलमुख हस्त होता है। यदि दोनों हाथों में हंसपक्ष हस्त को रखकर और उन दोनों हाथों को चतुरस्त्र अवस्था में रखकर एक–दूसरे के सामने रखा जाए तब तलमुख नृत्त हस्त कहा जा सकता है।

---

[24] वही, श्लोक सं0 11–16, पृ0सं0 40

4. **स्वस्तिक**—दोनों हाथो में तलमुख हस्त पकड़कर उन्हें कलाई से स्वस्तिक अवस्था में रखने से स्वस्तिक हस्त बनता है। यदि दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में छाती के समक्ष पकड़कर रखें तथा दोनों हाथों की कलाई से हाथों की हथेली को सामने की ओर दिखाया जाए तो भी स्वस्तिक हस्त किया जा सकता है।

5. **विप्रकीर्ण**— स्वस्तिक नृत्त हस्त पकड़ने के बाद जब उन्हें छोड़ा जाए तब विप्रकीर्ण हस्त होता है।

6. **अरालकटकामुख**—अलपद्म हस्तों को परिवर्तित करने पर अरालकटकामुख हस्त कहलाता है। यदि एक हाथ में अराल तथा दूसरे हाथ में कटकामुख हस्त रखकर दोनों हाथों को कलाई से गोल घुमाते हुए दायें हाथ को ऊपर (सिर पर) कटकामुख में तथा बायें सामने (पार्श्व के सामने) अराल में रखें तो भी अरालकटकामुख हस्त किया जाता है।

7. **आविद्धवक्र**—दोनों हाथों के बाहु, कन्धों से हिलाएँ तथा दोनों हाथों में अराल हस्त रखकर ऊपर तथा नीचे की ओर कंपित करने पर आविद्धवक्र कहलाता है। यदि दोनों हाथों के बाहु, कोहनी तथा कन्धों को घुमाया जाए तथा इस प्रक्रिया को ऊपर से नीचे तथा दोनों पर्श्व दाहिने तथा बायें किया जाए तो भी आविद्धवक्र हो सकता है।

8. **सूच्यास्य**—सर्पशीर्ष हस्त को तिरछा घुमा के मध्यमा अँगुली को अंगूठे से छुआ जाए तब सूच्यास्य हस्त कहलाता है। यदि व्यावर्तितम् नृत्त हस्त दोनों हाथों से उरः के सामने रखकर घुमाकर सूचीहस्त हाथों में पकड़ा जाए तब सूचास्य हस्त किया जाता है।

9. **रेचित**–दोनों हाथों में हंसपक्ष हस्त को द्रुत लय में घुमाते हुए हथेली को ऊपर की तरफ रखा जाए तो रेचित हस्त कहलाता है।

10. **अर्धरेचित**–एक हाथ को चतुरस्त्र तथा दूसरे हाथ को रेचित रखें तो अर्धरेचित नृत्त हस्त कहा जाता है। यदि एक हाथ की मुद्रा चतुरस्र में अर्थात् छाती के पास तथा दूसरे हाथ को रेचित में ऊपर की ओर रखें तो भी अर्धरेचित हस्त की प्रस्तुति की जा सकती है।

11. **उत्तानवंचित**–हाथों में त्रिपताक हस्त रखकर तिरछा घुमाते हुए उत्तानवंचित किया जाता है। यदि दोनों हाथों में त्रिपताक हस्त पकड़कर उसे गाल पर, गले पर, कन्धे पर चित्रित करने के लिए उपयोग कर तिरछा घुमाया जाए तब इस नृत्त को उत्तानवंचित कहते हैं।

12. **पल्लव** – कलाई से दोनों हाथ से पताक हस्त बनाते हुए कन्धे तक हाथ को उठाकर मिलाना है। (जिसमें कुछ मूर्तियों में पताक के ऊपरान्त मुकूल हस्त भी प्राप्त होता है।)

13. **नितम्ब**–दोनों हाथों में पताक हस्त बनाकर कन्धे के ऊपर से घुमाना और कटि के पास ले जाने की क्रिया से नितम्ब हस्त बनता है।

14. **केशबन्ध**–बालों को या केश प्रदेश को दिखाते हुए पताक हस्त को घुमाना जिसमें दोनों बाहु सीधे रखे जाए उसे केशबन्ध कहते हैं।

15. **लता**–दोनों बाहुओं को लम्बा फैलाकर आगे की ओर तथा पीछे की तरफ और तिरछे फैलाते हुए लता किया जाता है।

16. **करिहस्त**—एक हाथ को उसी पताक मुद्रा में कान के पास रखा जाए और दूसरे हाथ को लता हस्त की तरह दोनों पार्श्व में झुलाने से करिहस्त बनता है।

17. **पक्षवंचितक**—एक हाथ में त्रिपताक हस्त को कटि प्रदेश पर रखकर तथा दूसरा शीर्ष स्थान पर रखा जाए या दोनों हाथों में त्रिपताक रखकर कटि तथा शीर्ष स्थान पर रखने से पक्षवंचितक हस्त बनता है।

18. **पक्षप्रद्योतक**—पक्षवंचितक हस्त को उल्टा कर देने से पक्षप्रद्योतक हस्त बनता है।

19. **गरूडपक्ष**—हथेली को अधोमुख रखकर पक्षवंचितक करने पर या गरूड़ के पंख के समान बाहु को चलाने से गरूड़पक्ष हस्त बनता है।

20. **दण्डपक्ष**—दोनों हस्तों में हंसपक्ष रखते हुए उल्टा तथा सीधा घुमाते हुए दोनों बाहु को कोहनी से कंधे तक सीधा रखने से दण्डपक्ष हस्त बनता है।

21. **ऊर्ध्वमण्डलि**—दोनों हाथों में दण्डपक्ष हस्त को सिर के ऊपर की ओर घुमाने से ऊर्ध्वमण्डलि हस्त होता है।

22. **पार्श्वमण्डलिन**—दोनों ही पार्श्व में बारी—बारी दोनों हस्तों से ऊर्ध्वमण्डली करते हुए हस्तों को घुमाने की क्रिया पार्श्वमण्डली कहलाती है।

23. **उरोमण्डली**—एक हाथ से उद्वेष्टित तथा अपवेष्टित हस्त करण करते हुए वक्षस्थल के पास घुमाने से उरोमण्डली हस्त बनता है।

24. **उरःपार्श्वमण्डल**–एक हस्त में अलपल्लव तथा दूसरे हस्त में अराल हस्त रखते हुए घुमाकर अलपल्लव हस्त को वक्षस्थल के पास तथा अराल हस्त को पार्श्व पर रखने से उरःपार्श्वमण्डल बनता है।

25. **मुष्टिकस्वस्तिक**–दोनों हाथों में कटकामुख हस्त को कलाई से एक–दूसरे के साथ जोड़ते हुए घुमाया जाए तो मुष्टिकस्वस्तिक हस्त बनता है।

26. **नलिनीपद्मकोष**–पद्मकोष हस्त बनाते हुए दोनों हस्त को सीधा और उल्टा घुमाने से नलिनीपद्मकोष बनता है।

27. **अलपल्लव**–दोनों हस्तों को ऊपर की तरफ उठाकर कंधों की तरफ कपोलों के पास घुमाव देकर उद्वेष्टित करण में रखने से अलपल्लव बनता है।

28. **उल्बण**–अलपल्लव हस्तों को कन्धे के ऊपर कपोल के पास रखते हुए कपित्थ किया जाए तो उल्बण हस्त बनता है।

29. **ललित**–दो अलपल्लव हस्तों को सिर पर ले जाने से वह ललित हस्त बनता है।

30. **वलित**–दो लता हस्तों को कलाई पर स्वस्तिक करने से वलित हस्त बनता है।

हस्तकरणों के चार प्रकार :–

मुख्यतः करणों के लिए यह चार हस्त के प्रकारों को बतलाया गया है। इन चार प्रकार का करणों में प्रयोग किया जाता है – 1. अपवेष्टित, 2. उद्वेष्टित, 3. व्यावर्तित, 4. परिवर्तित।

1. **अपवेष्टित** :– इसमें हस्त अँगुलियों को क्रमशः तर्जनी से प्रारम्भ करते हुए सभी अंगुलियों को बन्द करते हुए हाथ को गोलाकार दिशा में घुमाते हैं, इसे अपवेष्टित कहा गया है।

2. **उद्वेष्टित** :– इसमें हस्त अंगुलियों को क्रमशः तर्जनी से प्रारम्भ कर सभी अंगुलियों को बाहर की ओर खुलता हुआ जैसा दिखाते हैं जिसे उद्वेष्टित कहा गया है।

3. **व्यावर्तित** :– इसमें ठीक उसी प्रकार परन्तु कनिष्टिका अँगुली से प्रारम्भ करते हुए हाथ को गोलाकार स्थिति में घुमाते हुए अन्दर की ओर बंद करने को व्यावर्तित कहा गया है।

4. **परिवर्तित** :– इसमें कनिष्ठिका से प्रारम्भ करते हुए हाथ को गोल घुमाते हुए बाहर की ओर खोलने को परिवर्तित कहा जाता है।

इसी प्रकार हस्तों की प्रमुखता बताते हुए नाट्यशास्त्र में 64 हस्तमुद्राओं को विस्तारपूर्वक बताया गया है।

पादकर्म :–

इत्येवं जङ्घयोः कर्म पादयोस्तु निबोधत।
उद्घट्टितः समश्चैव तथाग्रतलसञ्चरः।।४०।।
अञ्चितः कुञ्चितश्चैव पाद्ः पञ्चविधः स्मृतः।
स्थित्वा पादतलाग्रेण पाष्णिर्भूमौ निपात्यते।।४१।। [25]

[25] नाट्यशास्त्र, बाबूलाला शुक्ल, अध्याय 10, श्लोक सं0 40–41

नाट्यशास्त्र में दोनों पैरों के भिन्न–भिन्न पाँच प्रकार के बताए गये हैं–1. उद्घट्टित, 2. सम, 3. अग्रतलसंचर, 4. अंचित, 5. कुंचित।

1. **उद्घट्टित** :– इसमें पैरों की एड़ी क्रम से उठा कर भूमि पर रखी जाती है, पंजे भूमि पर स्थिर रहते हैं। इस क्रिया को उद्घट्टित कहा गया है।

2. **सम** :– पैरों को स्वाभाविक तरह से भूमि पर रखते हुए चलने को समपाद कहा गया है।

3. **अग्रतल** :– एड़ी को उठा कर पंजों से भूमि पर क्रमशः मारा जाए तो अग्रतल पाद होता है। उदाहरण–युद्ध में तीव्रगति से आगे की ओर बढ़ना।

4. **अंचित** :– पैरों को सम पाद में रख कर पंजों को उठा दे और एड़ी से भूमि पर क्रमशः कुटनम् करें तो अंचित पाद कहलाएगा।

5. **कुंचित** :– सम पाद से स्थिर होकर एक पैर के पंजे को दबाएं (कुंचित करे)। यह क्रिया क्रम से दोहराने को कुंचित कहते हैं।

बाहु भेद :– नाट्यशास्त्र में बाहु के 10 भेद माने गए हैं –

तिर्यक तथोर्ध्वसंस्थो ह्यधोमुखश्चाञ्चितोऽपविद्धस्तु।
मण्डलगतिस्तथा स्वस्तिकश्च पृष्ठानुसारी च।।२१२।।
उद्वेष्टितः प्रसारित इत्येते वै स्मृताः प्रकारास्तु।
बाह्वोरिति करणगता विज्ञेया नर्तकैर्नित्यम्।।२१३।। [26]

[26] नाट्यशास्त्र, बाबूलाला शुक्ल, अध्याय 10, श्लोक सं0 212–213

1. **तिर्यक** :– जब बाहु बगल में फैले हुए होते हैं।
2. **ऊर्ध्वस्थ** :– बाहु शिर के ऊपर सीधा फैले हुए होते हैं।
3. **अधोमुख** :– बाहु सीधा सामने की ओर नीचे की तरफ होते हैं।
4. **अञ्चित** :– बाहु कोहनी उठाकर कंधों के पास डोला स्थिति में रखने से अंचित भेद बनता है।
5. **अपविद्ध** :– जब बाहु छाती से बाहर की तरफ फैले जैसे तिर्यक होता है।
6. **मण्डलगति** :– जब बाहु को गोलाकार गति से घुमाया जाता है (चक्र की समान) उसे मण्डलगति कहा जाता है।
7. **स्वस्तिक** :– बाहु को कलाईयों से मिलाकर एक–दूसरे के विपरीत दिशा में रखा जाए तो स्वस्तिक होता है।
8. **पृष्ठानुसारी** :– बाहु को गति से पीछे की ओर फेंका जाए तो पृष्ठानुसारी भेद कहलाता है।
9. **उद्वेष्टित** :– बाहु मण्डलगति के विपरीत दिशा में गोल घुमें और वापस आ जाए तो उद्वेष्टित होता है।
10. **प्रसारित** :– जब बाहु की दिशा निर्धारित न हो और वह कहीं भी फैले हुए हो तो प्रसारित गति कहलाते हैं।

चारी :–

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के एकादश अध्याय में चारी के विविध प्रकार एवं विधान विस्तृत रूप में वर्णन किए गए हैं। सामान्य भाषा में चारी को चाल कहा जाता है जो भारतीय विविध विधा में भिन्न–भिन्न प्रकार से

जानी जाती है। जैसे–दक्षिण भारत के केरल के बहुप्रसिद्ध कथकली नृत्य में ''सारी'' एवं मणिपुरी नृत्य में ''चाली'' आदि नाम वर्तमान में प्राप्त होते हैं। सामान्यतः नृत्य एवं अभिनय में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका में प्रसिद्ध चारी में विभिन्न अंग जैसे कटि, पार्श्व, उरू, जंघा और पाद के द्वारा एक साथ किए जाने वाले विभिन्न अभिनयों का समानीकरण होता है जिसमें शारीरिक चेष्टायें व्याप्त रहती हैं। नाट्याभिनय में चारी की महत्वता को मुख्य रूप देते हुए नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि पाद के गति के अनुसार ही हस्त संचालन होना चाहिए। जिस प्रकार पाद की गति आगे–पीछे हो उसी का अनुसरण करते हुए हस्त एवं शेष शारीरिक चेष्टाऐं भी होनी चाहिए एवं अन्त में पाद भूमि पर हो तो हस्त अपने इष्ट प्रदर्शन के पश्चात्, घुमाव लेकर कटि पर रखने का विधान है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में चारी के मुख्य दो भेदों का वर्णन किया है जिनके अनेक प्रभेद का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

मुख्य रूप से चारी को दो भागों में विभाजित किया गया है– 1. भूमिचारी, 2. आकाशचारी एवं इनके 16–16 प्रकार का उल्लेख विस्तृत रूप में वर्णित मिलता है।

भूमिचारी :–

समपादा स्थितावर्ता शकटास्या तथैव च।
अध्यर्धिका चाषगतिर्विच्यवा च तथापरा।।८।।
एलकाक्रीडिता बद्धा उरूद्वत्ता तथाड्डिता।
उत्स्पन्दिताथ जनिता स्पन्दिता चापस्पन्दिता।।९।।

समोत्सारित मत्तल्ली मत्तल्लीचेति षोडश।

एता भौम्यस्मृताश्चार्य: [27]

1. **समपाद** :– दोनों पैरों को समान स्थिति में मिलाकर रखना और संचालन करने को समपाद कहते हैं, जैसे–तत्कार करना।
2. **स्थितावर्ता** :– एक पैर से अग्रतलसंचर करते हुए स्वस्तिक स्थिति में रख कर दूसरे पैर को अंगूठे से अपने पास गोल बनाते हुए खींचना और पुनः यह दूसरे पैर से दोहराना स्थितावर्ता कहलाता है।
3. **शकटास्य** :– सीधा दोनों हाथों के साथ नीचे झुकें, एक पैर आगे तथा एक पीछे की ओर करते हुए अग्रतलसंचर करते हुए वक्ष को उठाए रखा जाता है, जैसे सूर्य नमस्कार में करते हैं तो वह शकटास्य चारी कहलाता है।
4. **अद्यर्धिका** :– दोनों पैरों में 45^{o} का अन्तर रख कर जो पैर आगे की ओर हो उसी ओर शरीर को झुकाया जाये तो अद्यर्धिका चारी कहलाता है, इसमें त्रिभंग भी किया जाता है।
5. **चाषगति** :– दायें पैर से अर्द्धचन्द्र आकार बनाते हुए बाएँ पैर को उससे मिला लिया जाए इसे क्रमशः दोहराया जाए तो चाषगति होती है।
6. **विच्यवा** :– एड़ियों को उठाएँ एवं पंजों से भूमि पर कुटनम् करें तो विच्यवा चारी होता है।

---

[27] नाट्यशास्त्र, बाबूलाला शुक्ल, अध्याय 11, श्लोक सं0 8–9

7. **एलकाक्रीडिता** :– एड़ियाँ उठा कर पंजों को आगे की ओर बढ़ाकर शरीर को पीछें मोड़ें, साथ ही साथ शरीर को हल्का–हल्का उछालते रहें तो एलकाक्रीडिता चारी होती है।

8. **बद्धा** :– दोनों जंघा (पिण्डलियों) को स्वस्तिक में रख कर पंजे से गोल घुमा कर एड़ी को रखना, यह दोहराते हुए आगे बढ़ना बद्धा चारी होता है।

9. **उरूद्वृता** :– दोनों घुटनों को झुका कर एक पैर को 180° तक घुमाकर दूसरे पैर को उसके आगे रखना और दोनों पैर से इसे दोहराते रहना ही उरूद्वृता चारी कहलाता है।

10. **अङ्क्रिता** :– एक पैर के पंजे से दूसरे पैर के एड़ी को टाप देना अङ्क्रिता कहलाता है।

11. **उत्स्पंदिता** :– एक पैर को समान स्थिति में रखें और दूसरे पैर के पंजो को सरकाते हुए खोलें और बंद करें, इसमें घुटने झुके हुए हो तो उसे उत्स्पंदिता कहते हैं।

12. **जनिता** :– दोनों पैर के घुटने झुका कर स्वस्तिक अवस्था में पैरों को रखें एवं पीछे के पैर की एड़ी उठा कर आगे के पैर से थाप देते हुए अगल–बगल जाएँ तो वह जनिता चारी होती है।

13. **स्यन्दिता** :– दोनों पैरों को आमने–सामने 45° पर या 3 बित्ते की दूरी पर रखा जाए तो स्यन्दिता कहलाता है।

14. **अपस्यन्दिता** :– स्यन्दिता चारी का विपरीत किया जाए तो अपस्यन्दिता चारी कहलाते हैं।

15. **समोत्सरित** :– पैरों को स्वस्तिक स्थिति में रख कर पीछे वाले पैर के पंजे को आगे की तरफ सरकाएँ और आगे वाले पैर को पीछे की तरफ (तलसंचर) क्रम से किया जाए जिसमें कुंचित का भी प्रयोग हो तो उसे समोत्सरित चारी कहा जाता है।

16. **मतल्ली** :– समोत्सरित चारी से ही आगे की तरफ संचालन करने को मतल्ली कहा जाता है।

आकाशचारी :–

इस प्रकार भूमिचारी 16 प्रकार की नाट्यशास्त्र में बताई गई है।

''श्रृणुताकाशिकी: पुन:।।
अतिक्रान्ता ह्यपक्रान्ता पार्श्वक्रान्ता तथैव च।
ऊर्ध्वजानुश्च सूची च तथा नूपुरपादिका।।
डोलापादा तथाक्षिप्ता आविद्धोहद्वत्तसंज्ञिते।
विद्युद्भ्रान्ता ह्यलाता च भुजङ्गत्रासिता तथा।
मृगप्लुता च दण्डा च भ्रमरी चेति षोडश।
आकाशिक्य: स्मृता ह्येता लक्षणञ्च निबोधत।।'' [28]

उपरिलिखित श्लोक में 16 प्रकार की आकाशचारी बतलाई गई हैं –

1. **अतिक्रान्ता** :– बाएँ पैर को 'कुञ्चित' अवस्था में ऊपर की तरफ उठाया जाता है, फिर सामने की तरफ फैलाते हुए सीधा जमीन पर रखा जाता है। फिर दाएं पैर को पीछे की तरफ ऊपर उठा कर और कमर से आगे झुक कर तो अतिकान्ता चारी होती है।

[28] बाबूलाला शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र अध्याय–11, श्लोक सं0 10 से 13

2. **अपक्रान्ता** :– एक पैर को कुञ्चित कर पिंडलियों को घुमाते हुए ऊपर की ओर उठाकर बगल से रखें और इस क्रिया को क्रमशः दोनों पैर से दोहराएँ तो अपक्रान्ता चारी होती है।

3. **पार्श्वक्रान्ता** :– पैर को कुञ्चित कर जंघा से ऊपर की ओर उठाया जाये तथा उसी के सीधे में सीधा नीचे भूमि पर रखें और दूसरे पैर को सरका कर जोड़ लें तो पार्श्वक्रान्ता होती है।

4. **ऊर्ध्वजानु** :– पैरों को कुंचित कर जंघा को छाती तक ऊपर उठाकर रखा जाए, इसी क्रम को दूसरे पैर से भी दोहराया जाए तो ऊर्ध्वजानु चारी कहलाता है।

5. **सूची** :– पांव कुंचित कर जंघा से उठाकर फैला दें और पंजे तथा अंगूठे को भूमि पर रखें तो सूची चारी होती है।

6. **नुपुरपादिका** :– पैर को अंचित कर ऊपर की तरफ उठाकर दूसरे पैर के पीछे अर्द्ध गोलाकार में घुमा कर रखने से नुपुरपादिका चारी होती है।

7. **डोलापादा** :– एक पैर को 'कुंचित' अवस्था में पेन्डुलम की तरह एक ओर से दूसरी ओर हवा में डोलाएँ तथा अंचित कर भूमि पर रखें तो डोला पाद होता है।

8. **आक्षिप्ता** :– पैर को कुञ्चित कर जंघा से उठाकर अंचित अवस्था में भूमि पर रखना और पैरों को स्वस्तिक में होने से आक्षिप्ता कहलाता है।

9. **अविद्धा** :– पैर को जंघा से उठाकर स्वस्तिक कर एक पैर को फैलाते हुए कुञ्चित से अंचित करते हुए भूमि पर जल्दी से रखें तो आविद्धा चारी होती है।

10. **उद्वृत्ता** :– आविद्धा स्थिति में एक पैर को जंघा से उठाकर कुञ्चित कर दूसरे पैर का एक सर्कल (गोल घुमाकर) लगाकर भूमि में रखें, इस क्रम से दोनों पैर से करने पर उद्वृत्ता चारी होती है।

11. **विद्युत्क्रान्ता** :– एक गोल चक्कर लेकर दोनों पैरों से एक साथ उछले ताकि पैर सर से घूमकर भूमि पर रखा जाए, इसे विद्युत्भ्रान्ता चारी कहा जाता है।

12. **अलात** :– पैर को कुञ्चित कर सामने की तरफ फैला कर गोल घुमाकर वापस दूसरे पैर की एड़ी के पास रखें और दूसरे पैर को जल्दी से कुञ्चित में उठा लें तो अलात चारी होती है।

13. **भुजंगत्रासिता** :– पैर को कुञ्चित कर ऊपर उठाकर पिंडली के साथ जंघा तथा कटि को भी गोल घुमाते हुए पंजे को भूमि पर रखें।

14. **हरिणप्लुता** :– अतिक्रान्ता चारी की तरह ही करते हुए एक उछाल कर पैर को भूमि से टिकाकर दूसरे पैर को अंचित कर जंघा से आक्षिप्त स्थिति में पैर को रखा जाये तो वह हरिणप्लुता चारी कहलाती है।

15. **दण्डपादा** :– एक पैर को पीछे रख कर उसी को आगे की तरफ सिर के ऊपर तक फैलाया जाए सीधा (दण्डा की तरह) और तेजी से भूमि पर रखा जाए तो वह दण्डपाद चारी होगा।

16. **भ्रमरी** :– अतिक्रान्ता चारी प्रस्तुत करते हुए पीठ को घुमाकर (पूरे शरीर को घुमाते हुए) पैर को ऊपर उठाकर दूसरे पैर को उसके नीचे से घुमाया जाए तो वह भ्रमरी चारी कहलाता है।

स्थान :–

पैरों के भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में रखने को ही स्थान कहते हैं। दक्षिण भारत के मंदिरों में अंकित की गई नृत्य करती मूर्तियों में यह स्थान पाए जाते हैं। देवी–देवताओं की मूर्तियों में नृत्य एवं पैरों के स्थानक पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं और नाट्यशास्त्र में इसके होने का प्रमाण भी प्राप्त है। चारी और स्थान दोनों ही पैरों द्वारा किये जाने वाली क्रिया हैं परन्तु इनमें छंद मात्र का अंतर होने से इनकी गुणवत्ता बदल गई है। पैरों को भूमि पर रखना अगर चारी है तो जिस भाव से इन्हें रखा जाता है एवं स्थापित किया जाता है वह स्थानक है। चारी पहली गति है तो उसी गति को स्थितरूपा होने की क्रिया को स्थानक कहा गया है।

नाट्यशास्त्र में स्थान के 6 भेद बताए गए हैं –

''वैष्णवं समपादञ्च वैशाखं मण्लनन्तथा।

प्रत्यालीढं तथालीढं स्थानान्येतानि षण्णृणाम्।।'' [२९]

---

[29] बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्यशास्त्र, अध्याय 11, श्लोक सं0 51

1. **वैष्णव स्थान** :– पैरों के बीच अढाई बित्ते का अन्तर रखकर, दाहिने पैर को स्वाभाविक स्थिति में खड़ा करें और बायें पैर को तिरछा रखें, जंघा अंचित किया जाए तो वह वैष्णव स्थान कहलाता है। मुख्यतः इसका उपयोग दान करने के लिए, सूत्रधार के लिए, क्रोध, युद्ध आदि के पात्रों को दर्शाने के लिए वैष्णव स्थान का प्रयोग किया जाता है।

2. **समपाद स्थान** :– दोनों पैरों को समान स्थिति में साथ–साथ एक ताल के अंतराल पर रखने से समपाद स्थान होता है।

   उपयोग :– देवी–देवताओं के आगमन, ब्रह्माजी की प्रतिमा दिखाने के लिए, सन्यासी आदि के लिए समपाद स्थान का प्रयोग करते हैं।

3. **वैशाख स्थान** :– दोनों पैरों में साढ़े तीन ताल का अन्तर हो और एक–दूसरे के तिरछे स्थान पर अंकित गतिहीन अवस्था में हो तो वह वैशाख स्थान कहा जा सकता है। इस चारी का उपयोग मुख्यतः धनुष–बाण चलाने के लिए, व्यायाम के लिए, मनुष्य के आकार वाले पक्षियों के लिए आदि में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

4. **मण्डल स्थान** :– पैरों में चार ताल (बित्ता) का अंतर रखकर दोनों पैरों को तिरछा रखा जाए, जंघा तथा घुटनों को झुका कर एक आयताकार स्थिति बनाई जाए तो मण्डल स्थान हो जाता है। ओड़ीसा में इसे ''चौक'' स्थिति कहा जाता है। इस चारी का उपयोग रथ चलाने के लिए घोड़े–हाथी पर सवारी, ब्राह्मण दिखाने के लिए भी किया जा सकता है।

5. **आलीढ़ स्थान** :– यह मण्डल स्थान के जैसा ही है, परन्तु इसमें दाहिने पैर को ऊपर की तरफ फैला दिया जाए तो आलीढ़ स्थान हो जाता है। इस चारी का उपयोग युद्ध का प्रदर्शन, घोड़े की सवारी, क्रोधित प्रवृत्ति दर्शाना, शस्त्रों का प्रहार आदि आलीढ़ स्थान को दर्शाता है।

6. **प्रत्यालीढ़** :– आलीढ़ का विपरीत प्रत्यालीढ़, परन्तु बाएँ पैर को पाँच ताल से ऊपर फैलाया जाए तो वह प्रत्यालीढ़ कहलाता है। इसमें उत्तान तथा आकुञ्चित पाद का प्रयोग होता है जो प्रस्तुति के लिए अच्छा नहीं माना जाता।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में दिये 6 स्थानक नृत्य एवं करण प्रस्तुति में प्रयोजित होते हैं।

मानव जाति की प्रवृत्ति हमेशा से क्रियात्मक एवं अनुकरणात्मक रही है। वह जहाँ और जिस प्रकार भी रहा है, अपने आसपास की वस्तु अथवा वातावरण को देखकर अपने मनोभावों के उद्वेग के माध्यम से कुछ न कुछ समझने एवं उसे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण अनुकरण करने का प्रयास करता रहा है, जैसे प्राकृतिक संरचनाएँ, नदियों की कल–कल करती ध्वनि, पशु–पक्षियों की चाल एवं अंग संचालन, प्राकृतिक हवाओं की सरसराहट की तीव्र ध्वनि आदि को देखकर मनुष्य भी अपने अन्दर में समाहित विविध कलाओं को किसी न किसी प्रकार से साधारण जनजीवन में लाने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप अंग संचालन जिससे कालान्तर में नृत्त विधा का जन्म हुआ एवं इन्हीं प्रक्रियाओं से आरम्भ होकर आंगिक, वाचिक

आदि विभिन्न अभिनय का आविर्भाव हुआ। इसी क्रम में अपने शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र में वर्णित अभिनय पक्ष का किंचिद विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

अंगहार :–

1. स्थिरहस्त, 2. पर्यस्तक, 3. सूचीविद्ध, 4. अपविद्ध, 5. आक्षिप्तक, 6. उद्धट्टित, 7. विष्कम्भ, 8. अपराजित, 9. विष्कम्भापसृत, 10. मत्ताक्रीड, 11. स्वस्तिकरेचित, 12. पार्श्वस्वस्तिक, 13. वृश्चिकापसृत, 14. भ्रमर, 15. मत्तस्खलित, 16. मदविलासित, 17. गतिमण्डल, 18. परिच्छिन्न, 19. परिवृत्तरेचित, 20. वैशाखरेचित, 21. परावृत्त, 22. अलातक, 23. पार्श्वच्छेद, 24. विद्युतभ्रान्त, 25. उरूद्वृत्त, 26. आलीढ़, 27. रेचित, 28. आच्छुरित, 29. आक्षिप्तरेचित, 30. सम्भ्रान्त, 31. अपसर्प (अपसर्पित), 32. अर्धनिकुट्टक

रेचक :–

चतुरो रेचकांश्चापि गदतो में निबोधत।
पादरेचक एकः स्यात् द्वितीयः कटिरेचकः।।
कररेचकस्तृतीयस्तु चतुर्थः कण्ठरेचकः।

नाट्यशास्त्र में चार प्रकार के रेचक बताए गए हैं–पाद, कटि, हस्त और ग्रीवा रेचक। यह रेचक नृत्य के बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। जिससे कोई भी नृत्य शैली सौन्दर्यात्मक स्वरूप को पा सकती है। रेचक का अर्थ होता है शरीर के निश्चित भाग को वर्तुलाकार स्थिति में घुमाना, जिससे सौन्दर्यबोध की प्राप्ति होती है। शरीर के इस अवयवों का उपयोग करते हुए

यदि इसे किसी भी भंगिमाओं में वर्तलाकार स्थिति में घुमाया जाए तो उससे नृत्य के सौन्दर्य में वृद्धि होती है। उदाहरण के तौर पर स्थिर हस्त, आक्षिप्तक, स्वस्तिक रेचित, अलातक, भ्रमर इत्यादि।

1. **ग्रीवा रेचक :–** ग्रीवा के अलग–अलग चलन को ग्रीवा रेचक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जैसे–ऊपर उठाना, ग्रीवा को नीचे की तरफ झुकाना या गोल घुमाव देना यह भरतनाट्यम् में अभिनय दिखाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

2. **हस्त रेचक :–** हाथों को गोल घुमाते हुए हस्त मुद्रा का प्रदर्शन रेचक के अन्तर्गत आता है। जैसे हाथों को उठाना, फेंकना या गोल चक्रदार घुमाव दिखाया जाए तो वह हस्त रेचक है।

3. **कटि रेचक :–** कटि को गोल घुमाते हुए ऊपर उठाया जाए, पीछे की ओर निकाला जाए तो कटि रेचक कहलाता है।

4. **पाद रेचक :–** किसी भी एक–दो या दो से अधिक गति वाले पाद चारी को एक स्थान से दूसरी तरफ प्रयोग में लाया जाए और स्खलित गति में पैरों का संचालन पाद रेचक कहा जा सकता है।

dj.k %&

नोट : प्रस्तुत करण के छायाचित्र डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम् जी की पुस्तक ''Common Dance Codes of India and Indonesia'' से ली गई है तथा स्वयं शोधार्थी के छायाचित्र भी इस करण में प्रयोग किए गए है। निम्नलिखित 108 करणों के श्लोक बाबूलाल शुक्ल द्वारा लिखित पुस्तक ''नाट्यशास्त्र'' पुस्तक, अध्याय 4 में 61 से 168 तक के श्लोक के अनुसार लिया गया है।

1. तलपुष्पपुट

वामे पुष्पपुटः पार्श्वे पादोऽग्रतलसञ्चरः।

तथा च सन्नतं पार्श्वं तलपुष्पपुटं भवेत्।१।।

हाथों में पुष्पपुट हस्त रखकर बाँयीं ओर से पैरों को अग्रतल स्थिति में रखते हुए, उरः को सन्नत करते हुए संचरण करें तो तलपुष्पपुट करण कहलाता है।

इस करण का प्रयोग करने के लिए व्यावर्तित और परिवर्तित हस्तकरणों का प्रयोग, पैरों से अध्यर्धिका चारी करते हुए रेचिता कटि का प्रयोग किया जाए तथा आविद्धाचारी का प्रयोग किया जा सकता है।

2. वर्तित

कुञ्चितौ मणिबन्धे तु व्यावृत्तपरिवर्तितौ।

हस्तौ निपतितौ चोर्वोर्वर्तितं करणं तु तत्।।६३।।

व्यावर्तित तथा परिवर्तित हस्तकरण का प्रयोग करते हुए हाथों की दोनों कलाइ को दोनों जंघाओं पर रखा जाए तो वर्तित करण कहलाता है।

दोनों हाथों में डोला, पताक, व्यावर्तित हस्तों का प्रयोग करें तथा पैरों से स्वस्तिक एवं अध्यर्धिका चारी का प्रयोग कर वर्तितम् करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

3. वलितोरू

शुकतुण्डौ यदा हस्तौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ।

ऊरू च वलितौ 'यस्मिन्वलितोरुकमुच्यते।।६४।।

हाथों में शुकतुण्ड, व्यावृत्त और परिवर्तित हस्तकरणों का प्रयोग करते हुए वल्लित मुद्रा में जंघा पर रखा जाए तो वलितोरूक करण कहलाता है।

दोनों हाथों में शुकतुण्ड मुद्रा के साथ रेचक का प्रयोग करते हुए पैरों से आक्षिप्त तथा बद्धा का प्रयोग करते हुए भी वलितोरूक करण को किया जा सकता है।

4. अपविद्ध

आवर्त्य शुकतुण्डाख्यमूरूपृष्ठे निपातयेत्।

वामहस्तश्च वक्षःस्थो ह्यपविद्धं तु तद्भवेत्।।४।।

दाहिने हस्त में शुकतुण्ड तथा उसी तरफ की जंघा पर हाथों को रखा जाए और वक्षस्थल पर बायें हाथ को रखें तो अपविद्ध करण होता है।

एक हाथ में शुकतुण्ड तथा दूसरे हाथ में कटकामुख का प्रयोग करते हुए, पैर को आक्षिप्त करें तो अपविद्ध करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

5. समनख

श्लिष्टौ समनखौ पादौ करौ चापि प्रलम्बितौ।

देहः स्वाभाविको यत्र भयेत्समनखं तु तत्।।५।।

पैरों को सम स्थिति में समनख में रखा जाए तथा दोनों हाथों को नीचे की ओर रखकर शरीर को सामान्य अवस्था में रखा जाए तो समनख करण होता है।

हाथों में डोला तथा पैर में सम पादचारी का प्रयोग करते हुए भी इसका संचरण किया जा सकता है।

6. लीन

पताकाञ्जलि वक्षःस्थं प्रसारितशिरोधरम्।

निहञ्चितांसकूटं च तल्लीनं करणं स्मृतम्।।

दोनों हाथों से पताक को मिलाकर अंजलि हस्त को वक्षस्थल पर रखा जाए, गर्दन को उठाकर कन्धों को झुकाते हुए लीन करण करते हैं।

इसके प्रयोग में दोनों कलाईयों को एक साथ रखकर घुमाते हुए अंजलि हस्त बनाए तथा पैरों को स्वस्तिक अवस्था में रखकर शरीर से एक चक्कर लगाते हुए गोल घूम जाएँ तो लीन करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

7. स्वस्तिरेचित

स्वस्तिकौ रेचिकाबिद्धौ विश्लिष्टौ कटिसंश्रितौ।

यत्र तत्करणं ज्ञेयं बुधैः स्वस्तिकरेचितम्।।

रेचित और आविद्ध हस्त मुद्रा को साथ रखकर स्वस्तिक कर हाथों को कटि पर रखा जाए तब स्वस्तिक रेचित करण होता है।

दोनों हाथों से कटकामुख से डोला हस्त बनाते हुए स्वास्तिक रखकर व्यावर्तितम् हस्त करते हुए कटि पर रखें तथा पैरों में अर्ध्यधिका तथा अतिक्रान्ता, अग्रतल का प्रयोग करते हुए भी इस करण को किया जा सकता है।

8. मण्डलस्वस्तिक

स्वस्तिकौ तु करौ कृत्वा प्राङ्मुखोर्ध्वतलौ समौ।

तथा च मण्डलं स्थानं मण्डलस्वस्तिकं तु तत्।।

दोनों हाथों को संयुक्त हस्त में रखते हुए स्वस्तिक मुद्रा बनाएँ और हाथों के तलों को सामने रखते हुए ऊपर ले जाकर घुमाएँ तथा शरीर से मण्डल स्थानक बनाएँ तो मण्डल स्वस्तिक कहलाता है।

इस करण को करने के लिए आयतमण्डल, विच्यवाचारी के साथ अध्यर्धिका के साथ स्वस्तिक, डोला, व्यावर्तितम् हस्तकरण तथा कटकामुख हस्त का प्रयोग करते हुए दर्शाया जा सकता है।

9. निकुट्टकम्

निकुट्टितौ यदा हस्तौ स्वबाहुशिरसोऽन्तरे।

पादौ निकुट्टितौ चैव ज्ञेयं तत्तु निकुट्टकम्।।

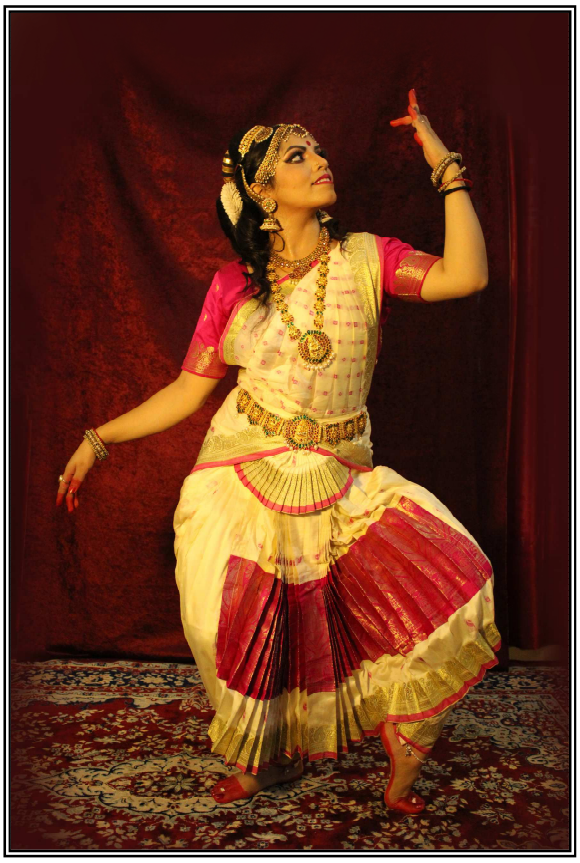

कन्धे और सिर के बीच हाथों को रखकर पैर से भी निकुट्टित किया जाए तो निकुट्टित करण होता है।

यदि दोनों हाथों को कन्धे के पास रखकर व्यावर्तित हस्त करते हुए उरः के सामने कटकामुख बनाया जाए वही पैरों से मण्डल स्थानक में उद्घट्टित किया जाए तो निकुट्टक करण हो सकता है।

10. अर्द्धनिकुट्टक

अञ्चितौ बाहुशिरसि हस्तस्त्वभिमुखाङ्गुलिः।

निकुञ्चितार्धयोगेन भवेदर्धनिकुट्टकम्।।

दोनों हाथों में अंचित मुद्रा के साथ सामने की तरफ करते हुए पैरों से किया जाए एवं नीचे ऊपर किया जाए तो अर्द्धनिकुट्टक करण होता है।

यदि पैरों में अध्यर्धिका चारी तथा उद्घट्टित पाद का प्रयोग करते हुए हाथों में कटकामुख, शुकतुण्ड और अलपद्म हस्त का प्रयोग किया जा सकता है।

11. कटिच्छिन्न

पर्यायशः कटिश्छिन्ना बाहू शिरसि पल्लवौ।

पुनः पुनश्च करणं कटिच्छिन्नं तु तद्भवेत्।।

कटि के पास हस्त को छिन्न मुद्रा में तथा पल्लव मुद्रा को सिर पर रखा जाए और बार–बार दोहराया जाए तो इसे कटि छिन्ना कहते हैं।

यदि अतिक्रान्ताचारी का प्रयोग करते हुए छिन्न कटि को दर्शाया जाए एवं हाथों में डोला, व्यावर्तितम् हस्त करते हुए उरः पर स्वस्तिक में हंसास्य मुद्रा रखें तो भी इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

12. अर्द्धरेचित

अपविद्धकरः सूच्या पादश्चैव निकुट्टितः।

सन्नतं यत्र पार्श्वं च तद्भवेदर्धरेचितम्।।

सूची हस्त मुद्रा में पैरों को निकुट्टित करते हुए ऊपर–नीचे की ओर हिलाते हुए उरः को नत स्थिति में रखा जाए तो वह अर्धरेचित होता है।

यदि पैरों में उद्घट्टित पाद करते हुए अर्ध्यधिकाचारी की जाए तथा एक हाथ में कटकामुख तथा दूसरे में सूची हस्त रखा जाए तो भी अर्धरेचित करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

13. वक्षःस्वस्तिक

स्वस्तिकौ चरणौ यत्र करौ वक्षस्थ रेचितौ।

निकुञ्चितं तथा वक्षो वक्षस्स्वस्तिकमेव तत्।।

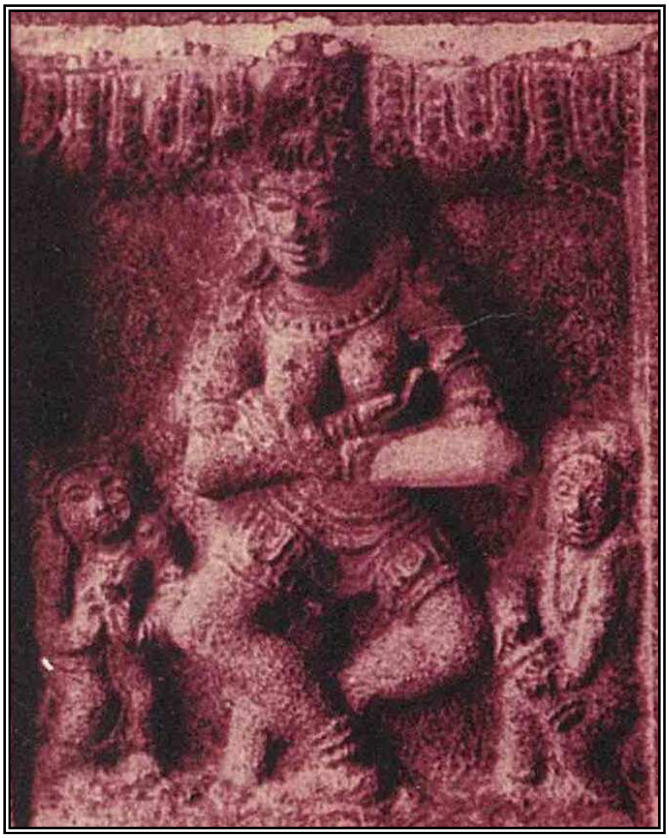

दोनों हाथों को रेचित मुद्रा करते हुए वक्षस्थल नत स्थिति में लाए तो वक्षस्वस्तिक करण होगा। यदि दोनों पैरों से समोत्सरी चारी का प्रयोग करते हुए हाथों में अराल के साथ स्वस्तिक और डोला बनाया जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

14. उन्मॅा

अञ्चितेन तु पादेन रेचितौ तु करौ यदा।

उन्मत्तं करणं तत्तु विज्ञेयं नृत्तकोविदैः।।

दोनों पैर तथा हाथ में अंचित तथा रेचित मुद्राओं का प्रयोग करें तो, नाट्यशास्त्र के विज्ञाताओं के अनुसार यह उन्मत करण है।

यदि आविद्धाचारी का प्रयोग करते हुए हाथों में ऊपर की तरफ डोला हस्त करने पर उन्मत करण हो सकता है।

15. स्वस्तिक

हस्ताभ्यामथ पादाभ्यां भवतः स्वस्तिकौ यदा।

तत्स्वस्तिकमिति प्रोक्तं करणं करणार्थिभिः।।

दोनों हाथ तथा पैरों को स्वस्तिक मुद्रा में रखा जाए तो नाट्यशास्त्र के विज्ञाता इसे स्वस्तिक करण कहते है।

उरः के सामने कुंचित में अलपद्म हस्त रखते हुए डोला किया जाए तथा पैरों में अग्रतल में स्वस्तिक फिर आयतमण्डल में पैरों को रखने से भी इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

16. पृष्ठस्वस्तिक

विक्षिप्ताक्षिप्तबाहुभ्यां स्वस्तिकौ चरणौ यदा।

अपक्रान्तार्धसूचिभ्यां तत् पृष्ठस्वस्तिकं भवेत्।।

दोनों हाथों को विक्षेप तथा आक्षेप स्थिति में रखते हुए स्वस्तिक मुद्रा में रखें और पैरों को अपक्रान्ता और अर्धसूची चारी में करते हुए स्वस्तिक बनाया जाए तो पृष्ठस्वस्तिक करण होता है।

यदि अपक्रान्ता और सूचीचारी का प्रयोग करते हुए हाथों में उद्वेष्टित के साथ व्यावर्तितम् तथा हंसास्य मुद्रा बनाई जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

17. दिक्स्वस्तिकम्

पार्श्वयोरग्रतश्चैव यत्र श्लिष्टः करो भवेत्।

स्वस्तिकौ हस्तपादाभ्यां तद्दिक्स्वस्तिकमुच्यते।।

पार्श्व से उर्ध्वजानु करते हुए हाथों को घुमाते हुए सामने की तरफ रखें और हाथ स्वास्तिक मुद्रा में रखें तो दिक स्वस्तिक करण होता है।

यदि पैरों को पार्श्व (बगल में) से उठाते हुए उर्ध्वजानुचारी का प्रयोग किया जाए और हाथों में अराल मुद्रा बनाकर तथा अधोमुख बाहु कर्म प्रयोग किया जाए तथा उरः के सामने रखा जाए तो भी इसकी प्रस्तुति सम्भव है।

18. अलातक

अलातं चरणं कृत्वा व्यंसयेद्दक्षिणं करम्।

ऊर्ध्वजानुक्रमश्चैव अलातकमिति स्मृतम्।।

पैरों में अलातचारी करते हुए हाथ को कंधे के पास से नीचे की ओर ले जाएं तथा उर्ध्वजानुचारी को करते हुए अलातकरण किया जाता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार अलातचारी (पैर को पूरा गोल घुमाते हुए) उर्ध्वजानु चारी पर दूसरा पैर कुंचित में उठाया जाए और हाथों में उद्वेष्टित और अपवेष्टितम् करते हुए हस्त रेचक का प्रयोग भी अलातकरण में सम्भव है।

19. कटीसम :-

स्वस्तिकापसृतः पादः करौ नाभिकटिस्थितौ।

पार्श्वमुद्वाहितं चैव करणं तत्कटीसमम्।।

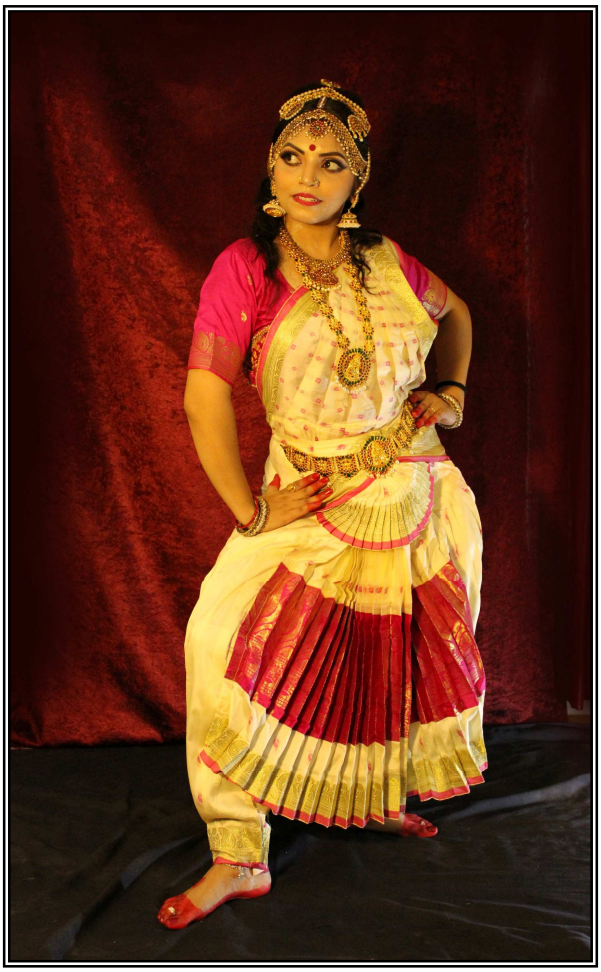

पैरों को स्वस्तिक में तथा हाथों को नाभि के साथ कटि के समीप रखकर उद्वाहित किया जाए तो कटिसम करण होता है।

यदि हाथ को कपित्थ हस्त में रखकर उसे नाभि के पास रखा जाए और दूसरे हाथ को कटि पर रखकर मतल्ली चारी की जाए तथा पैर को उठाकर पीछे की ओर अध्यर्धिका अवस्था में रखा जाए, हाथों में व्यावर्तितम्

हस्त करण तथा मुष्ठि हस्त का प्रयोग किया जाए इस तरह कटिसम करण को किया जा सकता है। यदि मतल्ली तथा अध्यर्धिका चारी का प्रयोग कर आक्षिप्ता चारी को उच्चारी की जाए तथा पैर के पंजे को और कटि को बद्धा चारी की तरह पैर को पीछे की ओर अध्यर्धिका की जाए तथा हस्त में कपित्थ, शुकतुण्ड व्यावर्तित हस्त करण का उपयोग मध्यलय में किया जाए इस तरह भी इस करण को किया जा सकता है।

20. आक्षिप्तरेचित

हस्तो हृदि भवेद्रामः सव्यश्चाक्षिप्तरेचितः।

रेचितश्चापविद्धश्च तत् स्यादाक्षिप्तरेचितम्।।

बाएँ हाथ को हृदय के पास और फिर रेचित मुद्रा का प्रयोग कर उपर की ओर रखा जाए फिर दोनों हाथों में रेचित का उपयोग करते हुए अपविद्ध मुद्रा में किया जाए तो आक्षिप्त रेचित करण होता हैं।

यदि आक्षिप्त चारी का प्रयोग पैरों से करते हुए बद्धा की तरह पंजा घुमाते हुए दूसरे पैर को उर्ध्वजानु के समान करें फिर सूचीपाद में रखकर पैर को घुमाते हुए शुकतुण्ड, कटकामुख, अलपद्म् और डोला हस्त की सहायता से इस करण को किया जा सकता है।

21. विक्षिप्ताक्षिप्तक

विक्षिप्तं हस्तपादन्तु तस्यैवाक्षेपणं पुनः।

यत्र तत्करणं ज्ञेयं विक्षिप्ताक्षिप्तकं द्विजाः।।

अगर हाथ और पैर को ऊपर की ओर विक्षिप्त किया जाने पर तथा उन्हें पुनः नीचे की ओर आक्षिप्त किया जाए तो उसे विक्षिप्तक्षिप्त करण कहा जाता है।

यदि पैर को आक्षिप्तचारी करते हुए उसे आगे की ओर उसी पैर को अंचित अवस्था में रखा जाए तथा हाथों में पताकहस्त मुद्रा तथा दूसरे हाथ में उद्वेष्टितम् हस्त मुद्रा रखें तो इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

22. अर्धस्वस्तिकम्

स्वस्तिकौ चरणौ कृत्वा करिहस्तश्च दक्षिणम्।

वक्षःस्थाने तथा वाममर्धस्वस्तिकमादिशेत्।।

पैरों को स्वस्तिक अवस्था में रखकर बाएं हाथ में कटि हस्त तथा दाएं हाथ को वक्षस्थल पर रखकर अर्धस्वस्तिक करण किया जाता है। यदि पैरों को स्वस्तिक रखकर आक्षिप्ताचारी का प्रयोग किया जाए तथा हाथों में कटकामुख हस्त वक्षस्थल के पास तथा कटि हस्त का उपयोग कर इस करण को किया जा सकता है।

23. अंचित

व्यावृत्तपरिवृत्तस्तु स एव तु करो यदा।

अञ्चितो नासिकाग्रे तु तदञ्चितमुदाहृतम्।।

यदि अर्द्ध स्वस्तिक करण करने के बाद करि हस्त को क्रमशः चक्रकार स्थिति में घुमाया जाए तथा परिवृत्त रखा जाए और फिर उसे नासिका के अग्र भाग की ओर झुका लिया जाए तो अंचित करण कहलाता है। यदि अर्द्धस्वस्तिक करण की ही स्थिति में ही रहते हुए करिहस्त को क्रमशः व्यावृत्त या परिवृत्त अर्थात चक्राकार घुमाकर विपरीत घुमाव दिया जाए और नासिका के पास से घुमाया जाए तो उससे अंचित करण बन सकता है।

24. भुजंगत्रासित

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य त्र्यश्रमूरुं विवर्तयेत्।

कटिजानु विवृत्तं च भुजङ्गत्रासितं भवेत्।।

पैरों को ऊपर की तरफ तथा कटि और जानु के साथ तिरछा घुमाते हुए भुजंगत्रासित करण किया जाता है। यदि पैर को कुंचित रखकर उसे कटि के साथ तिरछा घुमाकर हाथों में व्यावर्तितम् हस्तकरण, कटकामुख तथा डोलाहस्त का प्रयोग किया जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

25. उर्ध्वजानु

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य जानुमूर्ध्वं प्रसारयेत्।
प्रयोगवशगौ हस्तावूर्ध्वजानु प्रकीर्तितम्।।

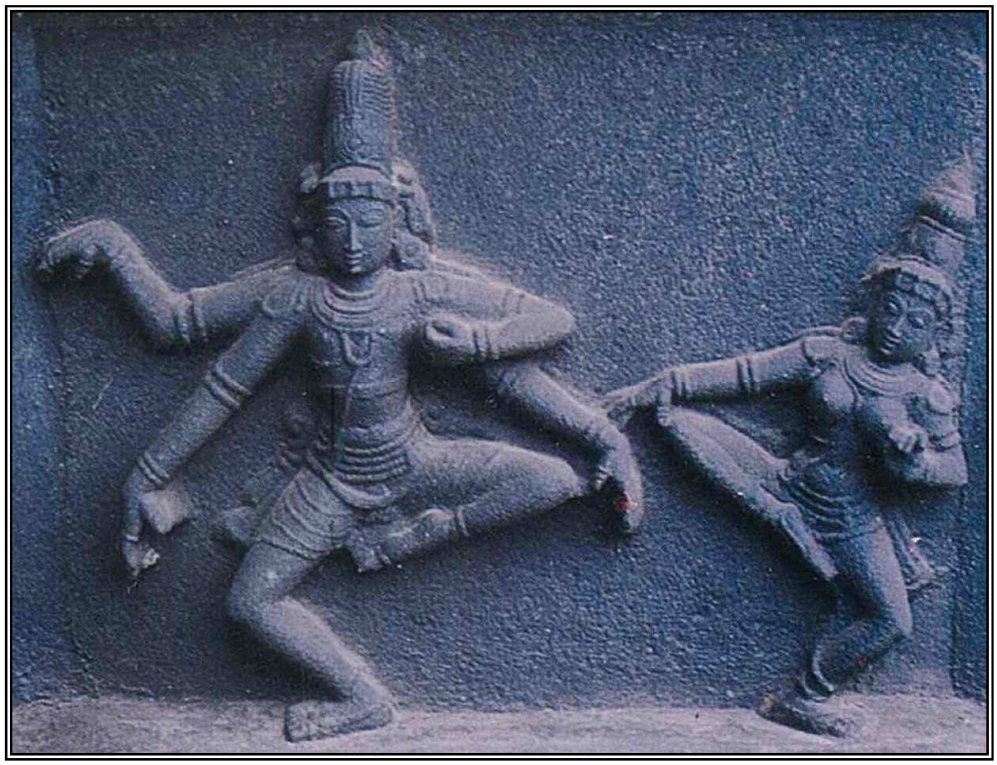

कुंचित पाद रखकर यदि पैरों को जानु से ऊपर की ओर उठाया जाए तथा हाथों को नृत्य की अवस्था में रखा जाए तो वह उर्ध्वजानुकरण कहलाता है। पैर को उर्ध्वजानु अवस्था में रखकर उसे कुंचित अवस्था में आगे की ओर फेंका जाए तथा हाथों में सूची हस्त एवं कटकामुख तथा डोलाहस्त का प्रयोग कर इस करण को किया जा सकता है।

26. निकुंचित :-

करणं वृश्चिकं कृत्वा करं पार्श्वे निकुञ्चयेत्।

नासाग्रे दक्षिणं चैव ज्ञेयं तद्धि निकुञ्चितम्।।

पार्श्व में वृश्चिक पैर को रखके दाहिने हाथ को नाक के ठीक सीधे रखकर हाथ को झुकाते हुए किया जाए तब उसे निकुंचित करण कहते है। यदि अग्रतल में पंजों पर कूदकर पैर को (पार्श्व में) वृश्चिक स्थिति में प्रयोग किए जाए तथा दोनों हाथों को अराल हस्त मुद्रा के साथ नाक के सामने से एक हाथ ऊपर डोला तथा पार्श्व में डोला किया जा सकता है।

27. मतल्ली

वामदक्षिणपादाभ्यां घूर्णमानोपसर्पणैः।

उद्वेष्टितापविद्धैश्च हस्तैर्मत्तल्ल्युदाहृतम्।।

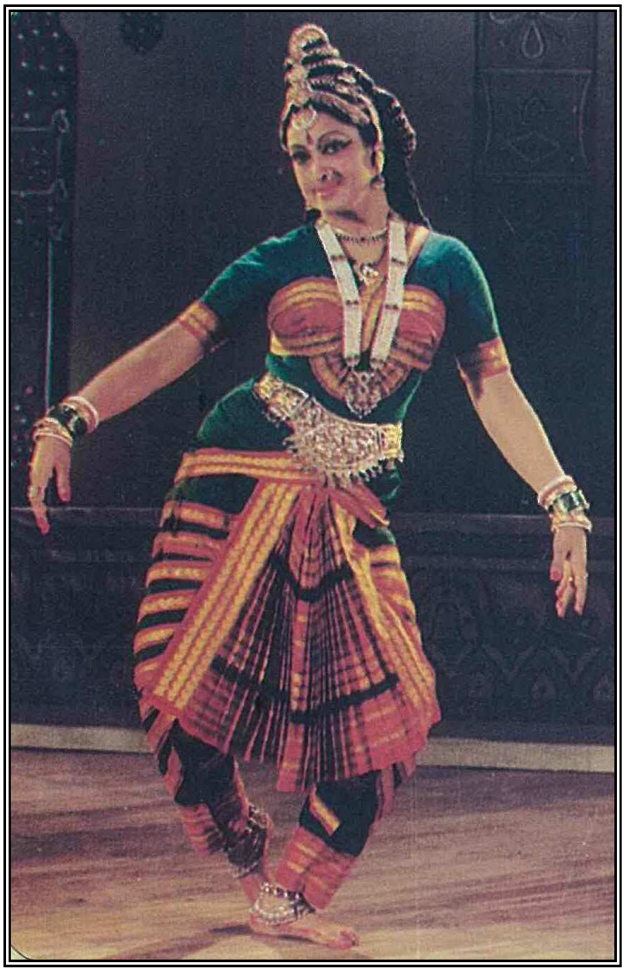

दाएं तथा बाएं पैर को क्रम से घुमाते हुए हाथों को उद्वेष्टित तथा अपवेष्टिम मुद्रा में किया जाए तो मतल्लि करण कहलाता है। यदि पैरों को मतल्लिचारी का प्रयोग करते हुए (क्रम से पैरों का कुंचति में संचरण किया जाए) हस्त रेचक का उपयोग करते हुए हाथों में अपवेष्टित तथा उद्वेष्टित हस्तकरण किया जाए तो मतल्लि हो सकता है।

28. अर्द्धमतल्लि

स्खलितापसृतौ पादौ वामहस्तश्च रेचितः।

सव्यहस्तः कटिस्थः स्यादर्धमत्तल्लिः तत्स्मृतम्।।

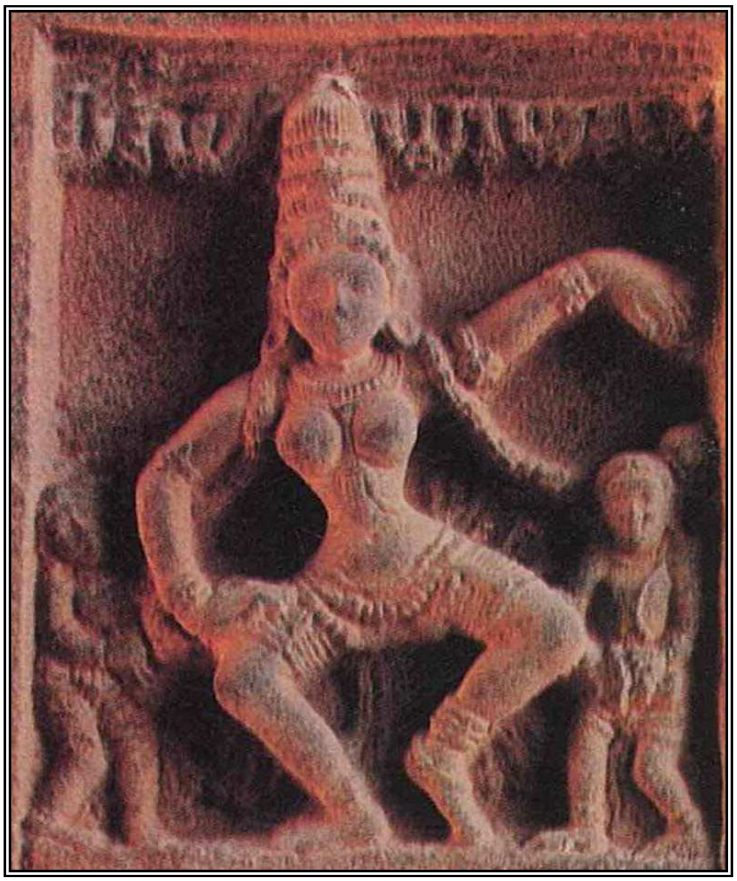

स्खलित अवस्था में पैर को पीछे की तरफ सरकाते हुए रेचित हस्त बाएं हाथ में और और दाएं हाथ की कटि पर रख के दर्शाया जाए तो उसे अर्धमतल्लि करण कहते हैं। यदि एक पैर को स्वस्तिक में पीछे रखकर हाथों को कुंचित में एक हाथ अलपद्म और दूसरा कटि पर स्थापित रखकर पैर को सूची पाद करते हुए एक हाथ को ऊपर की तरफ डोला में रखने से भी इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

29. रेचकनिकुट्ट

रेचितो दक्षिणो हस्तः पादः सव्यो निकुट्टितः।

दोला चैव भवेद्वामस्तद्रेचितनिकुट्टितम्।।

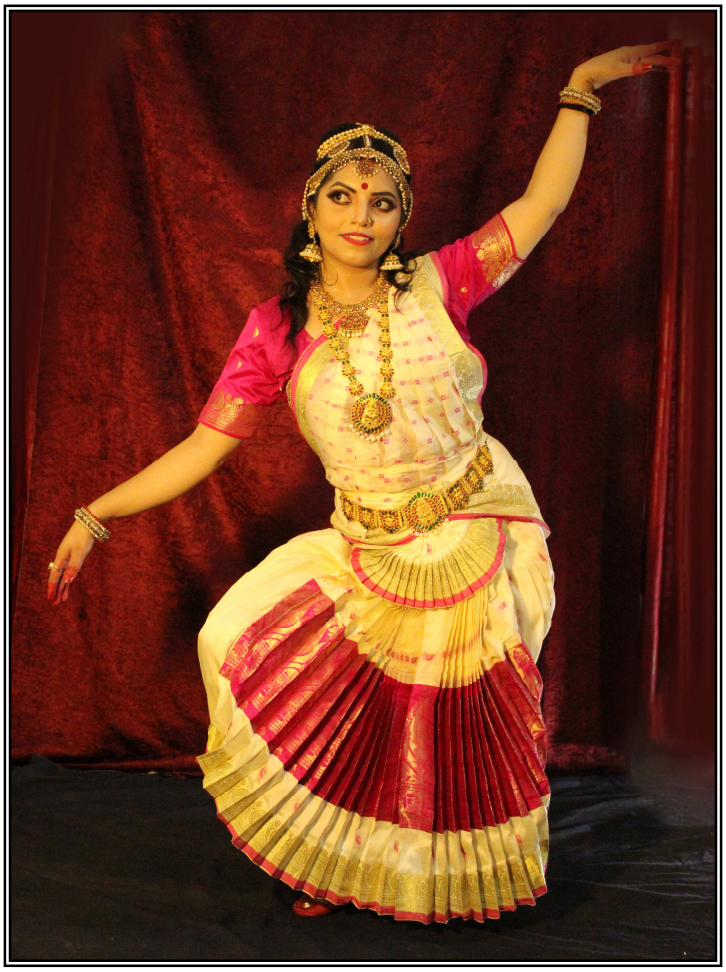

दाहिने हाथ में रेचित हस्त तथा पैर में उद्घट्टित फिर दाएं हाथ में डोला हस्त रखने से रेचित निकुट्टि करण होता है। यदि पैर में अग्रतल बारी–बारी से करते हुए, हस्त मुद्रा डोला रखकर शरीर को पार्श्व भेद प्रसारित का प्रयोग किया जाए तो भी इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

30. पादापविद्ध

कार्यौ नाभितटे हस्तौ प्राङ्मुखौ खटकामुखौ।

सूचीविद्धावपक्रान्तौ पादौ पादापविद्धके।।

हाथों को कटकामुख हस्त मुद्रा करते हुए कटि के ऊपर रखा जाए तथा पैरों को सूची पाद मे रखकर अपक्रान्ता किया जाए तब पादापविद्धक करण कहलाता है। यदि दोनों हाथों में कपित्थ हस्त मुद्रा रखते हुए सूची पाद को दूसरे पैर के साथ के पास जोड़ते हुए पैर को अपक्रान्ताचारी में रखा जा सकता है, उदाहरण–पैरों को स्थितावता चारी की तरह किया जा सकता है।

31. वलीत

अपविद्धो भेवद्धस्तः सूचीपादस्तथैव च।

तथा त्रिकं विवृत्तं च वलितं नाम तद्भवेत्।।

हाथों में अपविद्ध हस्त रखते हुए पैरों को सूचीपाद स्थिति में रखते हुए पैर को घुमा देने पर वलितकरण कहलाता है। आकाशीचारी की अन्तिम चारी भ्रमरी चारी का प्रदर्शन क्रम से करते हुए हाथ में व्यावर्तितम् हस्तकरण और नाट्यशास्त्र के अनुसार सूची हस्त का प्रयोग इस करण में किया जा सकता है।

32. घूर्णित

वर्तिताघूर्णितः सव्यो हस्तो वामश्च दोलितः।

स्वस्तिकापसृतः पादः करणं घूर्णितं तु तत्।।

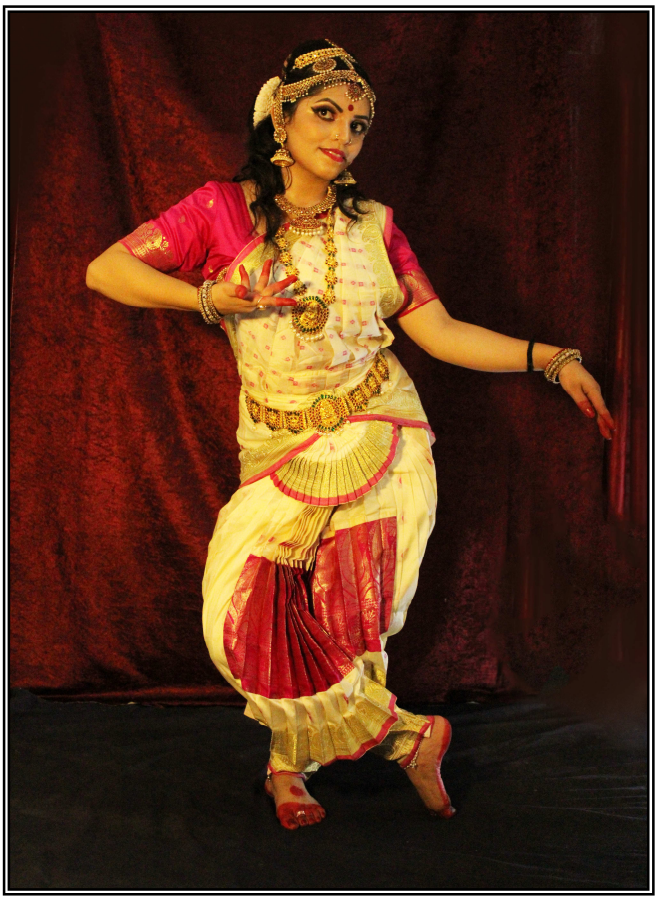

इस करण में दाएं हाथ में वलित मुद्रा रखकर बाएँ हाथ में डोला मुद्रा रखते हुए दोनों हाथों को घुमाएँ तथा दोनों पैरों को स्वस्तिक पाद में रखकर गोल घूमते हुए पैर दूर रखें तो घूर्णित करण होता है। दोनों हाथों को कंधे से उपर की तरफ रखें और परिवर्तित हस्त मुद्रा के साथ हाथों को पार्श्व के पास रखा जाए और पैरों को स्वस्तिक मुद्रा के साथ घूर्णित करण किया जा सकता है।

33. ललित

करिहस्तो भवेद्वामो दक्षिणश्चापवर्तितः।

बहुशः कुट्टितः पादो ज्ञेयं तल्ललितं बुधैः।।

बाएं हाथ में करिहस्त दाहिने में अपवेष्टित स्थिति का प्रयोग कर पैर से कुट्टित करते हुए ललित करण किया जाता है। अध्यर्धिकाचारी का प्रयोग करते हुए क्रमानुसार पैर की उदघट्टित क्रिया की जाए तथा एक हाथ में करिहस्त का प्रयोग करते हुए इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

34. दण्डपक्ष

ऊर्ध्वजानुं विधायाथ तस्योपरि लतां न्यसेत्।

दण्डपक्षं तु तत्प्रोक्तं करणं नृत्तवेदिभिः।।

पैरों से उर्ध्वजानु चारी का प्रदर्शन करते हुए दोनों हाथों में लताहस्त मुद्रा का उपयोग कर हाथ को घुटने पर रखा जाए तो दण्डपक्ष करण होता है। उर्ध्वजानु चारी के साथ हाथों में डोलाहस्त रखकर क्रम से इसे दोहराते हुए प्रस्तुत किया जा सकता है।

35. भुजंगत्रस्तरेचित

भुजङ्गत्रासितं कृत्वा यत्रोभावपि रेचितो।

वामपार्श्वस्थितौ हस्तौ भुजङ्गत्रस्तरेचितम्।।

पैरों को भुजंगत्रासित चारी का प्रदर्शन करते हुए रेचित हस्त मुद्रा का उपयोग करते हुए दायीं और बायीं ओर झुकते हुए भुजंगत्रस्तरेचित करण होता है। यदि पैरों का भुजंगत्रासितचारी के साथ अपक्रान्ताचारी करते हुए प्रयोग किया जाए तथा हाथों में डोला हस्त का प्रयोग करते हुए भी इस करण की प्रस्तुति की जा सकती है।

36. नुपूर

त्रिकं सुवलितं कृत्वा लतारेचितकौ करौ।

नूपुरश्च तथा पादः करणे नूपुरे न्यसेत्।।

पैरों को त्रिक अवस्था में गोल घुमाते हुए दोनों हाथों में लता हस्त तथा रेचित हस्त मुद्रा के संयोग से करते हुए पैरों में नुपूरचारी का प्रयोग किया जाए तो नुपूरकरण होता है। यदि पैरों में नुपूरचारी तथा हाथों में डोलाहस्त करते हुए हस्तरेचक का प्रयोग किया जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

37. वैशाखरेचित

रेचितौ हस्तपादौ च कटी ग्रीवा च रेचिता।

वैशाखस्थानकेनैतद्भवेद्वैशाखरेचितम्।।

यदि हाथ, पैर और कटि तथा ग्रीवारेचित मुद्रा में रखकर बाकी बचे हुए वैशाख स्थान में रखा जाए तो वैशाखरेचित करण होगा। पैर में अतिक्रान्ताचारी के समान पैरों को आगे की तरफ उठाते हुए चारी की जाए तथा हाथों में मुष्टि एवं कपित्थ का प्रयोग कर उपर वाले हाथ को चक्र के समान घुमाते हुए भी इसे किया जा सकता है।

38. भ्रमर

आक्षिप्तः स्वस्तिकः पादः करौ चोद्वेष्टितौ तथा।

त्रिकस्य वलनाच्चैव ज्ञेयं भ्रमरकं तु तत्।।

आक्षिप्त तथा स्वस्तिक पाद के साथ गोल घूम के भ्रमर करण होता है। यदि आक्षिप्तचारी कर पैर को स्वस्तिक में रखकर गोल घूम कर हाथों में व्यावर्तम् तथा कटकामुख हस्त करने पर इस करण को किया जा सकता है एवं यदि इसी अवस्था में एक हाथ में कटकामुख तथा दूसरे हाथ में पताकहस्त घुमाकर विकिर्ण दशा में रखा जाए तब भी इस करण को किया जा सकता है तथा इसी अवस्था में गोल घूमते हाथ को पहले पताक को विकीर्ण में रख गोल घुमाने पर और दूसरे हाथ में कटकामुख हस्त पकड़ा जाए तो भी उस करण को किया जा सकता है।

39. चतुर

अञ्चितः स्यात्करो वामः सव्यश्चतुर एव च।

दक्षिणः कुट्टितः पादः चतुर तत् प्रकीर्तितम्।।

हाथों को क्रमशः अंचित तथा कुंचित अवस्था में चतुरहस्त में रखकर कुट्टित पाद करने पर चतुर करण कहलाता है।

चतुर हस्त का उपयोग इस करण में अध्यर्धिका चारी के साथ किया जा सकता है। द्विभंग कटि का भी प्रयोग कर चतुर करण किया जा सकता है।

40- *भुजङ्गाञ्चित*

भुजङ्गत्रासितः पादो दक्षिणो रेचितः करः।।

लताख्यश्च करो वामो भुजङ्गाञ्चितकं भवेत्।

भुजंगत्रासित पाद का प्रयोग कर हाथ को रेचित अवस्था में रखने पर तथा दायें हाथ में लताहस्त करने से भुजङ्गाञ्चित करण होता है।

भुजंगचारी करते हुए पार्श्वक्रान्ताचारी का प्रयोग किया जाए एवं पताक तथा व्यावर्तित और सूचीहस्त का प्रयोग करने से भी इस करण को किया जा सकता है।

41. दण्डकरेचित

विक्षिप्तं हस्तपादं तू समन्ताद्यत्र दण्डवत्।

रेच्यते तद्धि करणं दण्डकरेचितम्।।

हाथों को ऊपर की ओर रेचित में रखते हुए दण्डपादचारी उपयोग दण्डरचितकरण होता है।

इस करण के नामानुसार दण्डपादचारी का उपयोग किया जाए तथा साथ में नुपूरपाद चारी भी की जाए एवं हाथों में डोलाहस्त प्रयोग करने से दण्डरेचित करण किया जा सकता है।

42. वृश्चिक कुट्टित

वृश्चिकं चरणं कृत्वा द्वावप्यथ निकुट्टितौ।

विधातव्यौ करौ तत्तु ज्ञेयं वृश्चिककुट्टितम्।।

यदि वृश्चिक करण प्रदर्शित करने के बाद दोनों हाथों को निकुट्टित किया जाए तो वृश्चिककुट्टित करण होता है।

43. कटिभ्रान्ता

सूचीं कृत्वापविद्धं च दक्षिणं चरण न्यसेत्।

रेचिता च कटिर्यत्र कटिभ्रान्तं तदुच्यते।।

पैरों को आलीढ़ अवस्था में लेकर, रेचिक कटि का उपयोग करके दूसरे पैर को स्वस्तिक करके गोल घुमाते हुए इस करण को किया जाता है। उपरान्त व करण करते समय व्यावर्तीत हस्त करण आविद्धवक्र नृत्य हस्त और कटकामुखहस्तों का अनुक्रम अनुसार उपयोग में लिया जा सकता है।

44. लतावृश्चिक

अञ्चितः पृष्ठतः पादः कुञ्चितोर्ध्वतलाङ्गुलिः।

लताख्यश्च करो वामस्तल्लतावृश्चिकं भवेत्।।

यदि एक पैर अंचित मुद्रा में पीछे की तरफ घुमा कर रखा जाए और बायें हाथ में लता मुद्रा रखी जाए तथा उसका पंजा और उंगलियाँ सिकुड़ी हुई और ऊपर की ओर रखी जाएँ तो लतावृश्चिक करण बनता है।

45- fNUuk

अलपद्मः कटीदेशे छिन्ना पर्यायशः कटी।

वैशाखस्थानकेनेह तच्छिन्न करणं भवेत्।।

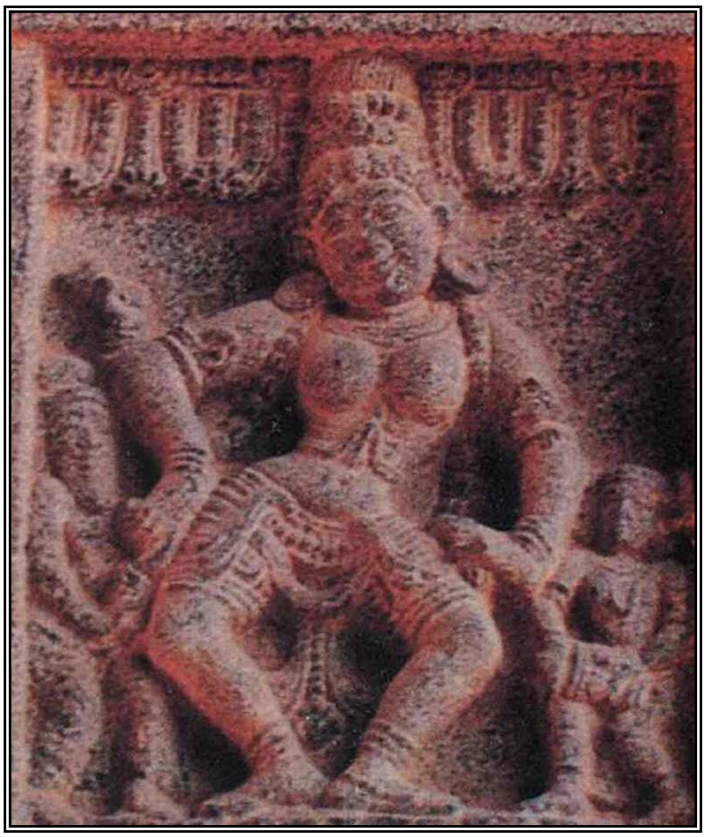

दोनों हाथों में अलपद्म मुद्रा बनाते हुए कटि पर स्थपित की जाए हो और क्रम से शेष अंगों को वैशाख स्थान में प्रस्तुत करते हुए छिन्न करण का प्रयोग किया जाता है। अग्रतल का प्रयोग करते हुए कटि के साथ दूसरे पैर को सूची पाद में रखकर गोल घुमाया जाए और हाथों में व्यावर्तित हस्त मुद्रा का प्रयोग करते हुए कटि पर स्थापित करके भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

46. वृश्चिकरेचित

वृश्चिकं चरणं कृत्वा स्वस्तिकौ च करावुभौ।

रेचितौ विप्रकीर्णौ च करौ वृश्चिकरेचितम्।।

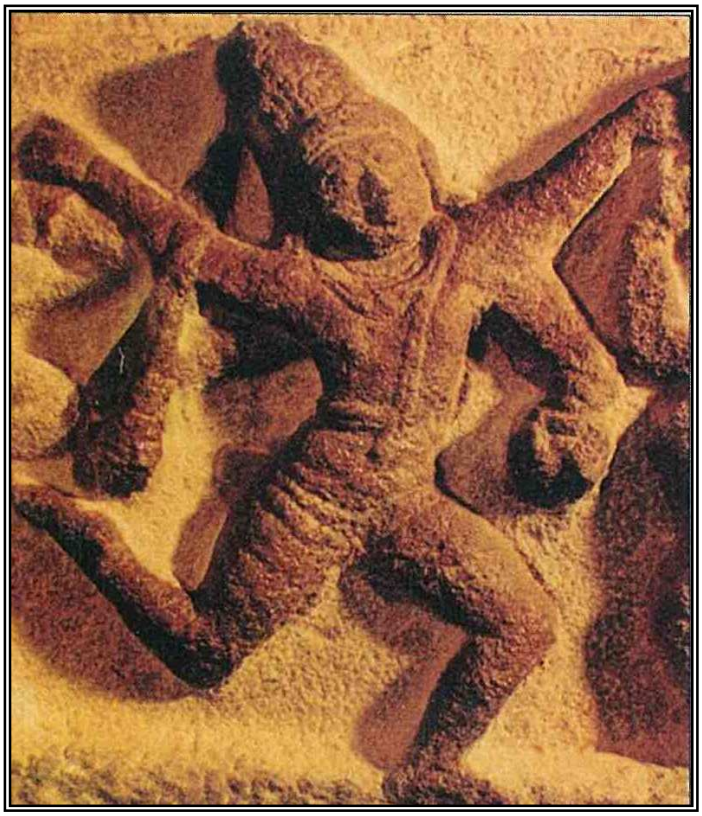

पैर में वृश्चिक पाद रखते हुए हाथों को स्वस्तिकरेचित में प्रदर्शित करते हुए विप्रकीर्ण की प्रस्तुति करने को वृश्चितरेचित करण कहते हैं। दोनों हाथों को पार्श्व से ऊपर की तरफ डोलाहस्त में रखें तथा पैर को वृश्चिक रखकर भी इसे (अग्रतल में कूदकर वृश्चिक स्थान पर ले जाना) किया जा सकता है।

47. वृश्चिक

बाहुशीर्षाञ्चितौ हस्तौ पादः पृष्ठाञ्चितस्तथा।

दूरसन्नतपृष्ठं च वृश्चिकं तत्पकीर्तितम्।।

यदि दोनों बाहु झुके हुए और कन्धों पर रखी जाए, पैर झुका हुआ और पीठ के पीछे की ओर घुमता हुआ रखा जाए तथा पीठ नत अर्थात् झुकी हुई रखी जाए तो वृश्चिक करण बनता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार दोनों हाथों को अलपद्म अवस्था में कन्धों के पास या कानों के पास रखें तथा एक पैर को वृश्चिक की तरह पीछे की ओर घुमाकर रखा जाए और पीठ को नत स्थिति में झुकी हुई रखी जाये तो वृश्चिक करण बन सकता है।

48. व्यंसित

आलीढस्थानके यत्र करौ वक्षसि रेचितौ।

ऊर्ध्वाधोविप्रकीर्णौ च व्यंसितं करणं तु तत्।।

यदि आलीढ़ स्थान को प्रदर्शित करते हुए दोनों स्थानों को वक्षस्थल पर रेचित अवस्था में रखें जाए और ऊपर तथा नीचे की ओर हिलाते हुए रखें तो वह व्यंसित करण बनता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार आलीढ़ स्थान में दोनों हाथों को वक्षस्थल से रेचित अवस्था में ले जाने के बाद नदी की तरंगों की तरह ऊपर–नीचे झुलाया जाए तथा विप्रीण हस्त का प्रयोग करें तो वह व्यंसित करण बन सकता है।

49. *पार्श्वनिकुट्टित*

हस्तौ तु स्वस्तिकौ पार्श्वे तथा पादो निकुट्टितः।

यत्र तत्करणं ज्ञेयं बुधैः पार्श्वनिकुट्टितम्।।

अध्यर्धिकाचारी करके पैरों से इस करण की प्रस्तुति की जाती है तथा एक पैर को अग्रतल और दूसरे पैर में एड़ी का उपयोग किया जाता है। हस्त मुद्राओं में व्यावर्तित हस्तकरण और कटकामुख हस्त का उपयोग किया जाता है।

50- ललाटतिलक

वृश्चिकं चरणं कृत्वा पादस्याङ्गुष्ठकेन तु।

ललाटे तिलकं कुर्याल्ललाटतिलकन्तु तत्।।

पैर को नुपूरचारी करते हुए दूसरे पैर के अंगूठे को उसी ओर के हाथ से पकड़कर मस्तक को अंगूठे से स्पर्श करने को ललाटतिलक करण कहते हैं तथा हस्तमुद्रा में कटकामुख और पताक हस्त का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी नुपूरचारी कर पैर को पीछे की ओर स्वस्तिक में रखकर भी उसे किया जाता है तथा नृत्य में तिलक लगाने की प्रक्रिया बताने के लिए इस करण का प्रयोग किया जाता है।

51. क्रान्तम्

पृष्ठतः कुञ्चितं कृत्वा व्यतिक्रान्तक्रमं ततः।
आक्षिप्तौ च करौ कार्यौ क्रान्तके करणे द्विजाः।।

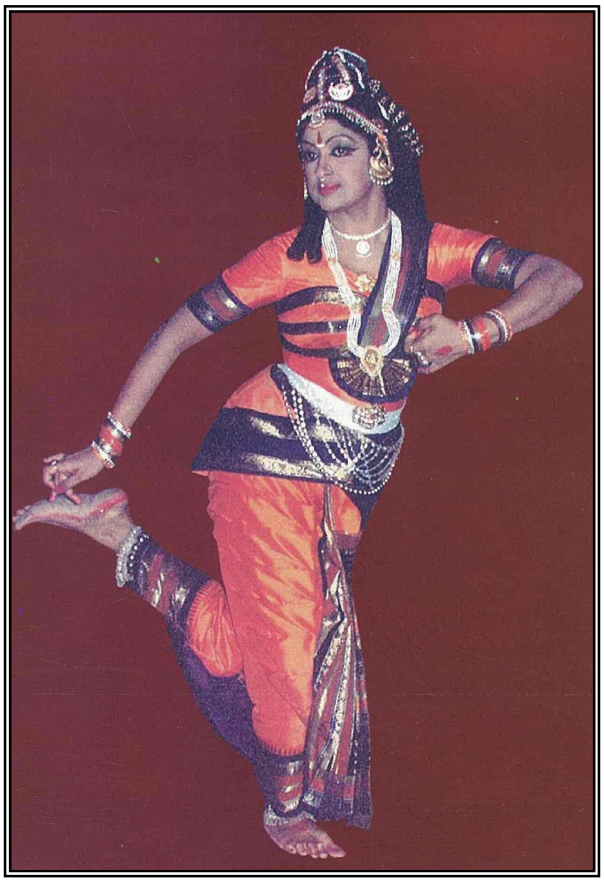

इस करण में पैरों को अतिक्रान्ताचारी में प्रयोग कर, अलपद्म हस्त और खटकामुख हस्त का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत करण का प्रयोग अलग जगहों पर तथा अभिनय को दिखाने के लिए भी किया जाता है।

उदाहरण–नायिका अपने पैर में चुभे हुए कांटे को निकालने का प्रयास कर रही है। इस अभिनय को दिखाने के लिए क्रान्ता का प्रयोग किया जाता सकता है।

52. कुंचित

आद्यः पादो नतः कार्यः सव्यहस्तश्च कुञ्चितः।

उत्तानो वामपार्श्वस्थस्तत्कुञ्चितमुदाहृतम्।।

दायें पैर को बायें पैर की एड़ी छूकर (प्रेरितमण्डल) की तरह शरीर को पीछे की ओर घुमाने से और बायें पैर को स्वस्तिक रखके गोल घुमने से चक्रमण्डल करण प्रस्तुत किया जाता है।

53. चक्रमंडल

प्रलम्बिताभ्यां बाहुभ्यां यद्त्रेणानतेन च।

अभ्यन्तरापविद्धः स्यात्तज्ज्ञेयं चक्रमण्डलम्।।

जिसमें समोत्सरीचारी का प्रयोग किया जाता है हाथों में पताक हस्त की मुद्रा बनायी जाती है। लास्य तथा अभिनय में नायिकाओं के पात्र को दिखाने के लिए इस चारी तथा करण का प्रयोग किया जाता है।

54. उरोमण्डल

स्वस्तिकापसृतौ पादावपविद्धक्रमौ यदा।

उरोमण्डलकौ हस्तावुरोमण्डलकन्तु तत्।।

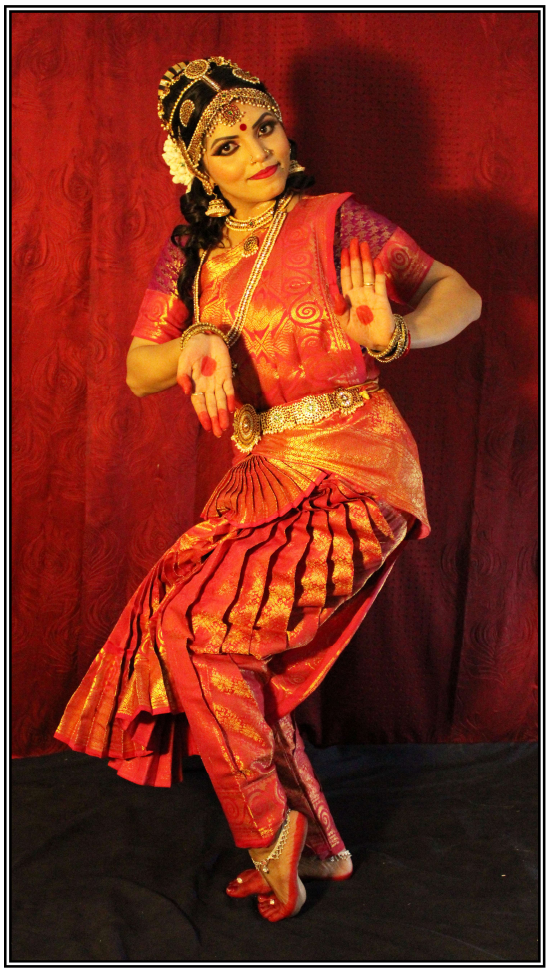

यदि स्वस्तिक अवस्था में दोनों पैर आगे बढ़ाकर अपविद्धचारी का प्रयोग किया जाए और दोनों हाथों को उरोमण्डल में रखें जाएँ तो उरोमण्डल करण बनता है। प्राप्त नृत्य मूर्तियाँ तथा डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्य जी के पुर्नजीवित की हुई करण की विधि के अनुसार स्वस्तिक अवस्था में दोनों पैर रखने के बाद अपविद्धाचारी का प्रयोग करते हुए दोनों हाथों को वक्षस्थल के पास उरोमण्डल स्थिति में रखा जाए तो उरोमण्डल करण बन सकता है।

55. आक्षिप्त

आक्षिप्तं हस्तपादं च क्रियते यत्र वेगतः।
आक्षिप्तं नाम करणं विज्ञेयं तद् द्विजोत्तमाः।।

यदि वेग या पैरों के साथ हाथ या पैर को झटका जाए तो वह आक्षिप्त करण कहलाता है। यहाँ भरत मुनि ने कोई विशेष विधि नहीं बताई है तथा हस्त और अन्य स्थितियों के बारे में भी सूचित नहीं किया है। अतः डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम जी के अनुसार तथा प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार यदि वेग के साथ बाहु को खोलते हुए पैर को झटके के साथ खोला जाए तथा हाथ को स्वस्तिक रखते हुए भूमि पर मण्डलस्थानक में बैठा जाए तो आक्षिप्त करण बन सकता है।

56. तलविलसित

ऊर्ध्वाङ्गुलितलः पादः पार्श्वेणोर्ध्वं प्रसारितः।

प्रकुर्यादञ्चिततलौ हस्तौ तलविलासिते।।

यदि तलवे और उँगलियों के साथ अपने पैर को ऊपर की ओर फैलाया जाए और दोनों हाथों के पंजे सिकोड़े हुए स्थिति में रखे जाएँ तो तलविलसित करण बनता है।

57. अर्गल

पृष्ठतः प्रसृतः पादो द्वौ तालावर्द्धमेव च।
तस्यैव चानुगो हस्तः पुरतस्त्वर्गलं तु तत्।।

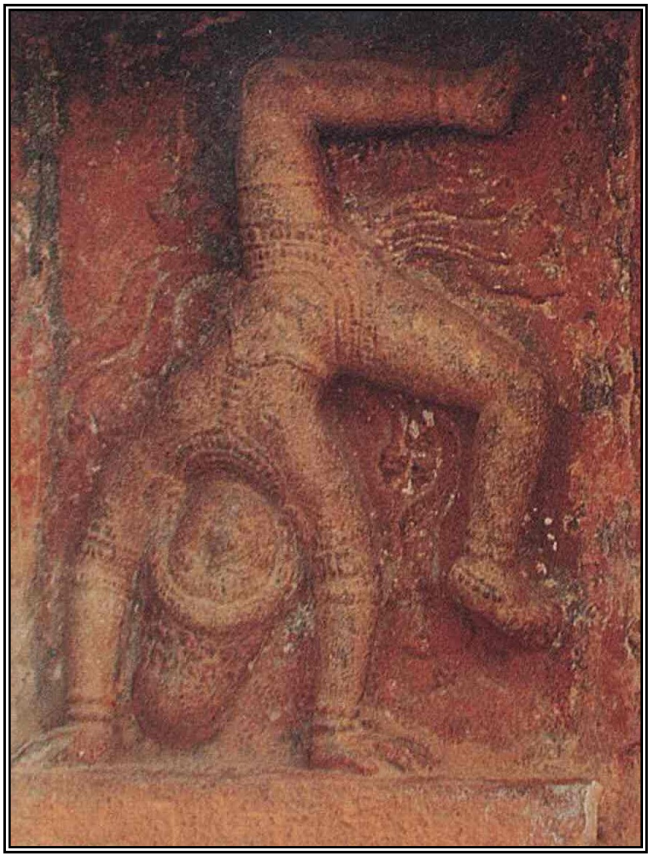

यदि पैर को पीछे की ओर हटाने के बाद 2.5 ताल तक रखा जाए और हाथ भी पैर के अनुसार सामने की ओर घुमाते हुए रखे जाए तो अर्गल करण बनता है। प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार यदि हाथों को भूमि पर टिकाते हुए पूरा शरीर ऊपर की ओर ले जाकर चक्राकार घूमता हुआ रखा जाए तो अर्गल करण बन सकता है। यह करण वर्तमान में प्रचलित पाश्चात्य नृत्य तथा एक्रोबेटिक से प्रयोग होने वाला कार्टव्हील के समान किया जाता है।

58. विक्षिप्त

विक्षिप्तं हस्तपादं च पृष्ठतः पार्श्वतोऽपि वा।

एकमार्गगतं यत्र तद्विक्षिप्तमुदाहृतम्।

यदि हाथ और पैर को पीछे और दोनों पार्श्व की ओर एकसाथ झटके से फेकें तो उसे विक्षिप्त करण कहते हैं। नाट्यशास्त्र में इन करण में इन हस्तों के विवरण के साथ और कोई विशेष महाति प्राप्त नहीं होती है। आक्षिप्तचारी का प्रयोग करते हुए पार्श्वक्रान्ता चारी पैरों से प्रदर्शित की जाती है। हाथों में क्रमशः पताक कटकामुख अलपद्म हस्त मुद्राओं से संचालन करते हुए शरीर द्वारा त्रिभंग मुद्रा में अद्धर्यधिकाचारी की जाए तो विक्षिप्तकरण कहलाता है।

59. आवृत्त

प्रसार्य कुञ्चितं पादं पुनरावर्तयेत् द्रुतम्।

प्रयोगवशगौ हस्तौ तदावर्त मुदाहृतम्।।

यदि कुंचित पाद को फैलाकर तुरन्त ही पैर को वापस लौटा दें और दोनों हाथों के प्रयोग के अनुसार रखते हुए तेज गति से घुमाव लें तो आवृत्तकरण बनता है।

60. डोलापाद

कुञ्चितं पादमुक्षिप्य पार्श्वात्पार्श्वं तु दोलयेत्।
प्रयोगवशगौ हस्तौ दोलापादं तदुच्यते।।

पताक एवं डोलाहस्त मुद्राओं का प्रयोग करते हुए पैरों में भी डोलापाद संचालन किया जाता है, इसमें पैरों को कुंचित मुद्रा में डोलाते हुए प्रदर्शन दिखाया जाता है। आखिरी में अंचित मुद्रा बनाकर भूमि पर एड़ी को रखते हैं। इसे ही डोलापाद करण कहा जाता है।

61. विवृत्त

आक्षिप्तं हस्तपादञ्च त्रिकचैव विवर्तयेत्।

रेचितौ च तथा हस्तौ विवृत्ते करणे द्विजाः।।

यदि दोनों हाथ और पैरों को बाहर की तरफ उछाल देकर गोल चक्र लेते हुए हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए तो उसे विवृत्त करण कहते हैं। इस करण में भी हाथ तथा स्थिति के बारे में ज्यादा स्पष्टता नहीं दी गई है, अतः डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम जी के अनुसार हाथ को गोल घुमाते हुए रेचित अवस्था में ले जाया जाता है, जिससे विवृत्त करण बन सकता है।

62. विनिवृत्त

सूचीविद्धं विधायाथ त्रिकन्तु विनिवर्तयेत्।
करौ च रेचितौ कार्यौ विनिवृत्ते द्विजोत्तमाः।।

यदि सूची चारी का प्रयोग करने के बाद एक गोलाकार घुमाव या चक्कर लेकर हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए तो विनिवृत्त करण बनता है। प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार सूचीचारी करने के बाद एक गोलाकार घुमाव देकर हाथ को रेचित मुद्रा में रखा जाए तो विनिवृत्त करण बन सकता है।

63. पार्श्वक्रान्ता

पार्श्वक्रान्तकमङ्कृत्वा पुरस्तादथ पातयेत्।
प्रयोगवशगौ हस्तौ पार्श्वक्रान्तन्तदुच्यते।।

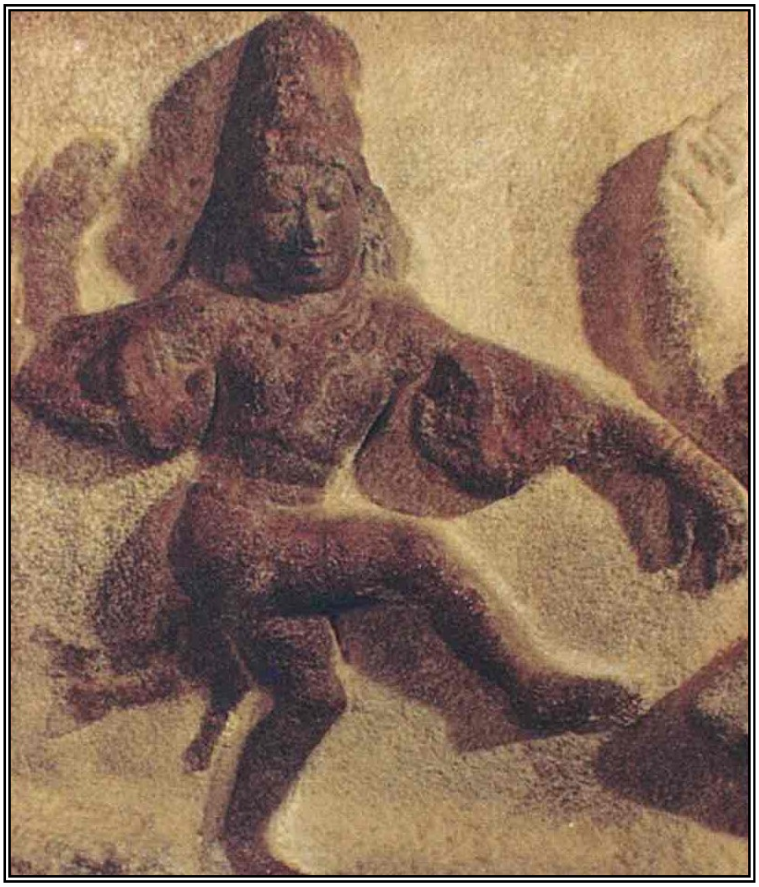

हाथों में डोला, पताक एवं अलपद्महस्त का प्रयोग करते हुए पैरों में पार्श्वक्रान्ताचारी की जाती है (पैरों में उर्ध्वजानु के साथ पार्श्व में फेंकते हुए भूमि पर अंचित में रखते हुए दूसरे पैर को सरकाते हुए अरमण्डी में बैठा जाता है) इसे पार्श्वक्रान्ता करण कहा जाता है।

64. निस्तुम्भित

पृष्ठतः कुञ्चितः पादौ वक्षश्चैव समुन्नतम्।

तिलके च करः स्थाप्यस्तन्निस्तम्भितमुच्यते।।

पैरों में स्यंदिता अपस्यंदिता मुद्रा करते हुए हाथों में कटकामुख हस्त मुद्रा एवं पताकहस्त मुद्रा बनायी जाये और आखिरी में पीछे वाले पैर को विक्षिप्तपाद मुद्रा में रखा जाय तो यह निशुंभित करण कहलाता है। उदाहरहण–नायिका आइने में मुखमण्डल में निहारते हुए तिलक लगाने का अभिनय करण के द्वारा प्रस्तुत कर सकती है।

65. विद्युद्भ्रान्ता

पृष्ठतो वलितम्पादं शिरोघृष्टम्प्रसारयेत्।
सर्वतो मण्डलाविद्धं विद्युद्भ्रान्तन्तदुच्यते।।

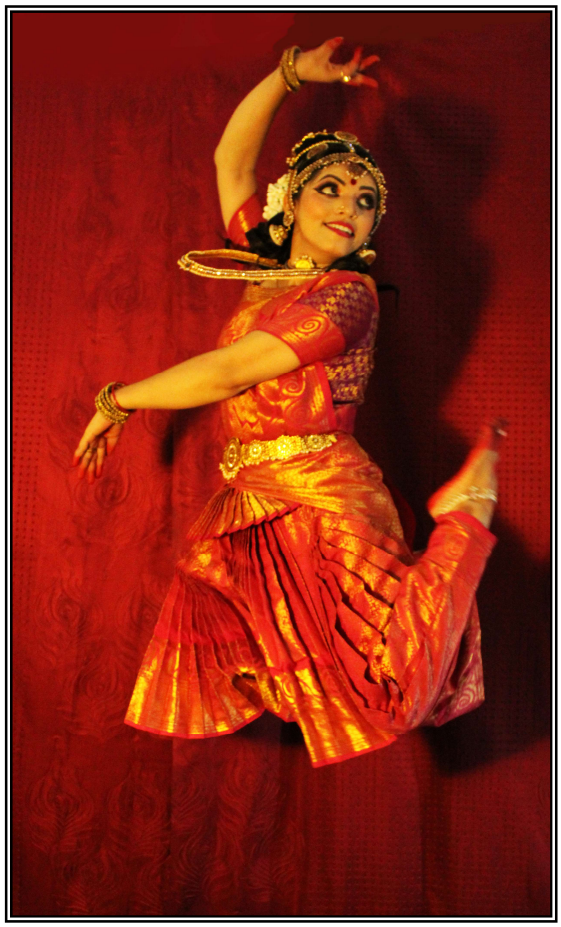

एक चक्कर लेकर पैरों में अरमण्डी और हाथों में अलपद्म रखते हुए दोनों पैरों को एकपाद उठाते हुए हवा में कूदा जाए और उसके उपरान्त हाथों में डोला और कटकामुख मुद्रा बनायी जाये, आखिर में अलपद्म और डोलाहस्तमुद्रा के साथ पैरों में स्वस्तिक मुद्रा एवं शरीर के द्विभंग बनाया जाए तो विद्युतभ्रान्ता करण कहलाता है।

66. अतिक्रान्त

अतिक्रान्तक्रमङ्कृत्वा पुरस्तात् सम्प्रसारयेत्।

प्रयोगवशगौ हस्तावतिक्रान्ते प्रकीर्तितौ।।

पैरों को कुंचित मुद्रा में उर्ध्वजानु कर आगे की ओर कुंचित रखते हुए भूमि पर रखकर पीछे वाले पैर को वृश्चिक में प्रस्तुत करते हुए हाथों में चन्द्रकला में करते हुए डोलाहस्त बनाया जाता है।

67. विवर्तितक

आक्षिप्तं हस्तपादञ्च त्रिकंचैव विवर्तितम्।

द्वितीयो रेचिते हस्तो विवर्तितकमेव तत्।।

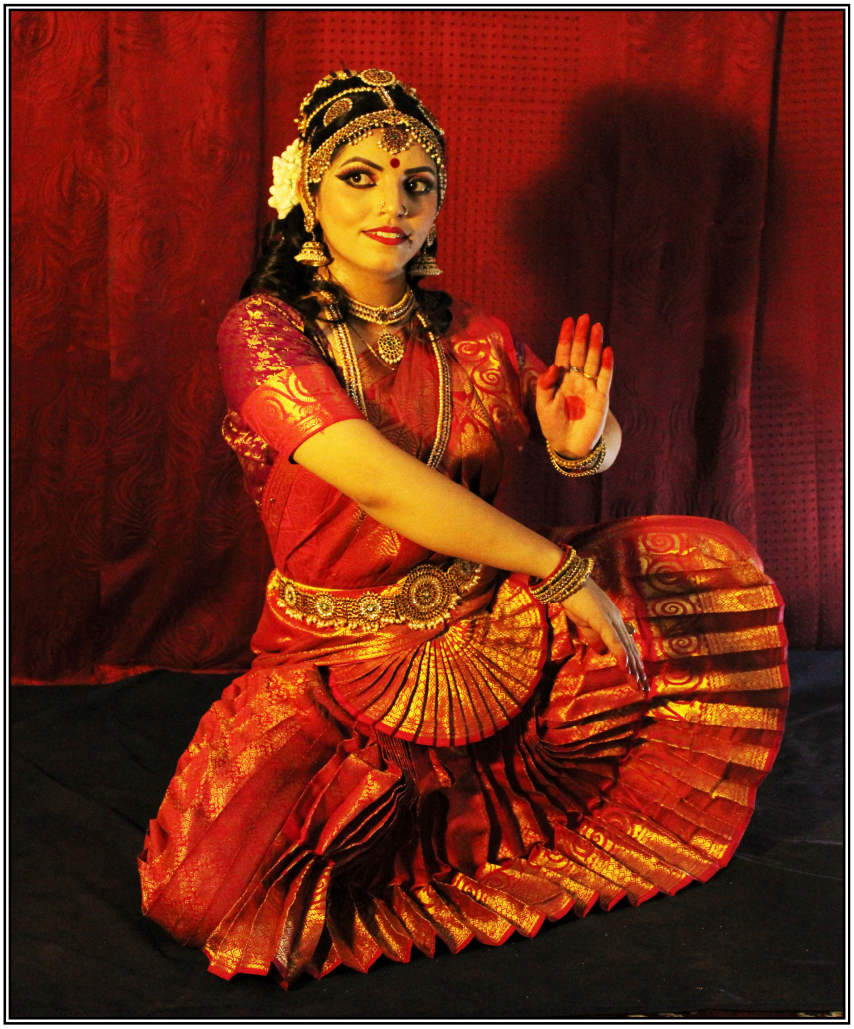

पैरों को स्वस्तिक मुद्रा में रखकर गोल घुमाते हुए एक हाथ कटि पर तथा दूसरा कटकामुख स्थिति में होगा, साथ ही साथ शरीर को त्रिभंग स्थिति में रखा जाता है।

68. गजक्रीडितक

कर्णोऽञ्चितः करो वामो लताहस्तश्च दक्षिणः।

दोलापादस्तथा चैव गजक्रीडितकं भवेत्।।

बायें हाथ को बायें कान के समीप रखा जाए तथा दाहिने हाथ लता मुद्रा में रहे और पैर से डोलापाद चारी की जाए तो गजक्रिडित करण होता है। यदि डोलापादचारी करते हुए दाहिने हाथ लता को दोनों पार्श्व में हिलाया जाए तथा बायें हाथ से कान दर्शाया जाए तो गजक्रिडित करण बन सकता है।

69. तलसंस्फोटित

द्रुतमुत्क्षिप्य चरणं पुरस्तादथ पातयेत्।
तलसंस्फोटितौ हस्तौ तलसंस्फोटिते मतौ।।

नुपुरपाद करते हुए दण्डपाद का प्रयोग करते हुए हाथ को उत्क्षिप्त किया जाता है, अतिक्रान्ताचारी को तीन बार दोहराते हुए दायें–बायें तथा सामने की ओर ताली मारते हुए तलसंस्फोटित करण किया जाता है।

70. गरूड़प्लुतक

पृष्ठप्रसारितः पादः लतारेचितकौ करौ।

समुन्नतं शिरश्चैव गरूडप्लुतकं भवेत्।।

अतिक्रान्ताचारी को करते हुए हाथ में गरूड़ के समान क्रिया की जाए, तथा पैर में वृश्चिक के समान पीछे से पैर उठे हुए तथा एक पैर से गोल घुमाने की प्रस्तुति गरूड़प्लुतक कहलाती है।

71. गण्डसूची

सूचीपादो नतं पार्श्वमेको वक्षःस्थितः करः।

द्वितीयश्चाञ्चितो गण्डे गण्डसूची तदुच्यते।।

पैरों में सूचीमुद्रा के साथ हाथों में व्यावर्तितकम हस्त रख सूचीहस्त मुद्रा करते हैं, फिर पीछे वाले पैर को सरकाते हुए छिन्नाकटि भेद का प्रयोग किया जाए तथा त्रिभंग मुद्रा रखी जाए तो गण्ड सूची करण किया जा सकता है।

72. परिवृत्त

ऊर्ध्वापवेष्टितौ हस्तौ सूचीपादो विवर्तितः।

परिवृत्तत्रिकं चैव परिवृत्तं तदुच्यते।।

यदि दोनों हाथ अपवेष्टित मुद्रा में उपर की ओर उठाए जाए तथा पैर में सूचीचारी का प्रयोग किया जाए, फिर उसे भ्रमरीचारी के अनुसार घुमाया जाए तब परिवृत्त करण किया जा सकता है।

73. पार्श्वजानु

एकः समस्थितः पाद ऊरुपृष्ठे स्थितोऽपरः।

मुष्टिहस्तश्च वक्षःस्थः पार्श्वजानु तदुच्यते।।

एक पैर समपाद चारी में रखा जाए और दूसरे पैर को उसके उरू भाग पर पीछे की ओर रखा जाए तथा मुष्टि मुद्रा में एक हाथ वक्षस्थल पर रखा जाए तो पार्श्वजानुकरण बनता है।

74. गृध्रावलीनक

पृष्ठप्रसारितः पादः किञ्चिदञ्चितजानुकः।

यत्र प्रसारितौ बाहू तत्स्याद् गृध्रावलीकनम्।।

एक पैर पीछे की ओर उठाकर घुटने से थोड़ा झुकाकर रखा जाए और दोनों हाथों को सामने फैलाया जाए तो गृध्रावलीनक करण कहते हैं। यदि दोनों हाथों को दोनों ओर फैलाते हुए डोलाहस्त मुद्रा में रखा जाए तथा एक पैर को पीछे की ओर लम्बा कर घुटने को मोड़ा जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

75. सन्नत

उत्प्लुत्य चरणौ कार्यावग्रतः स्वस्तिकस्थितौ।

सन्नतौ च तथा हस्तौ सन्नतं तदुदाहृतम्।।

एक पैर को उछाल कर दूसरे पैर को स्वस्तिक स्थिति में सामने की ओर रखने से तथा दोनों हाथ को सन्नत मुद्रा में रखा जाए तो सन्नत करण कहलाता है, यदि अतिक्रान्ताचारी का प्रयोग किया जाए तो वह बारी–बारी से दोनों पैरों में उछाल के साथ सामने स्वस्तिक हस्त मुद्रा में दोनों हाथों को एक–दूसर के ऊपर रखकर सम्पुट जैसी मुद्रा बनाए जाए तो सन्नत करण बन सकता है।

76. सूची

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य कुर्यादग्रस्थितं भुवि।
प्रयोगवशगौ हस्तौ सा सूची परिकीर्तिता।।

कुंचित पाद को उठाकर उसे आगे की तरफ भूमि पर रखा जाए तथा दोनों हाथों को जरूरत के अनुसार नृत्य प्रयोग करें तो सूची करण बनता है। आकाशचारी का उपयोग करते हुए दोनों हाथों को डोलारेचित मुद्रा में रखा जाए या कल्पना अनुसार नृत्य के प्रयोग में लिया जा सकता है, जिसका अन्य एक और प्रकार मूर्तियों में मिलता है। वह इस प्रकार है– दोनों पैरों को फैलाकर भूमि पर बैठा जाए तथा हाथों में सूचीहस्त पकड़ा जाए तो सूची करण बन सकता है।

77. अर्धसूची

अलपद्मः शिरोहस्तः सूचीपादश्च दक्षिणः।

यत्र तत्करणं ज्ञेयमर्धसूचीति नामतः।।

दोनों हाथों में अलपद्म मुद्रा रखकर सिर पर रखे और पैरों से सूची चारी का प्रदर्शन किया जाए तो अर्धसूची करण बनता है। यदि इसमें दोनों हाथों को किसी भी पार्श्व में या सामने की ओर सिर पर अलपद्म् करते हुए घुमाया जाए और पैरों से सूची दिखाकर भी अर्धसूची करण किया जा सकता है।

78. सूचीविद्ध

पादसूच्यां यदा पादो द्वितीयस्तु प्रविध्यते।

कटिवक्षः स्थितौ हस्तौ सूचीविद्धं तदुच्यते।।

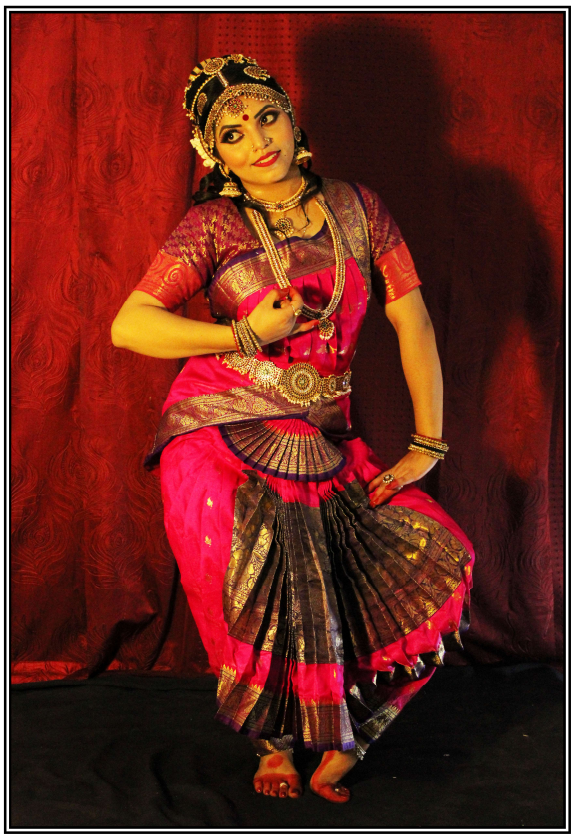

एक पैर सूची अवस्था में रहे और दूसरे पैर की एड़ी से लगाकर रखा जाए और एक हाथ कटि पर तथा दूसरा वक्ष स्थल पर स्थापित किया जाए तो सूचीविद्ध करण होता है। यदि इस करण में सूची पैर को पार्श्व में रखते हुए सामने की ओर से दूसरे पैर की एड़ी के पास रखा जाए और एक हाथ कटि तथा दूसरा हाथ नाट्यशास्त्र के अनुसार वक्ष पर स्थापित किया जाए तो भी पर वह सूचीविद्ध करण हो सकता है।

79. अपक्रान्त

कृत्वोरुवलितं पाद्मपक्रान्तक्रमं न्यसेत्।
प्रयोगवशगौ हस्तावपक्रान्तं तदुच्यते।।

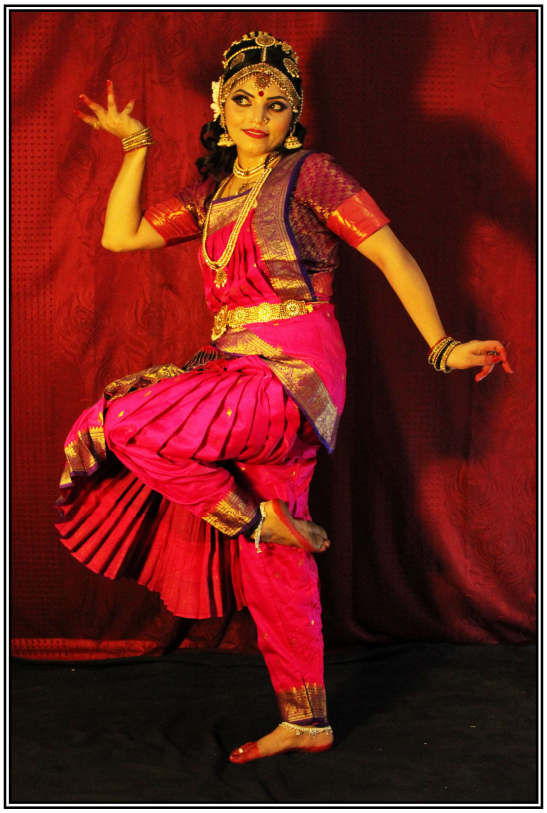

उरू (जंघा) को वलित करने के बाद पैरों में अपक्रान्ता चारी की जाए और दोनों हाथों को नृत्य प्रयोग या कल्पना के अनुसार रखें तो अपक्रान्ता करण बनता है। अपक्रान्ता चारी के साथ जो भी हस्त सुन्दर दिखते हैं, उसका प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर केशबन्ध का प्रयोग भी किया जा सकता है या एक हाथ को वक्ष के पास रखकर दूसरे हाथ से हस्तकरण का प्रयोग किया जाए जो पैरों की क्रिया के साथ मेल खाता है, जैसे उद्वेष्टितहस्त करण का भी प्रयोग किया जा सकता है।

80. मयूरललित

वृश्चिकं चरणं कृत्वा रेचितौ च तथा करौ।
तथा त्रिकं विवृत्तं च मयूरललितं भेवत्।।

दोनों हाथों को रेचित अवस्था में रखा जाए और गोल घुमा दिया जाए तो मयूर ललित करण बनता है। यदि मन्दिरों में करण की मिलने वाली नृत्य मूर्तियों के अनुसार षकटास्या चारी करके भूमि पर नौका आसन की स्थिति में रहते हुए यदि हाथों को कपोल के पास अलपद्म हस्त में रखा जाए तो भी वह मयूरललित के नाम से जाना जाता है एवं वृश्चिक करण को प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथों से रेचित अवस्था में रखा जाए और गोल घुमाया जाए तो उसे भी मयूर ललित करण कह सकते हैं।

81. सर्पित

अञ्चितापसृतौ पादौ शिरश्च परिवाहितम्।
रेचितौ च तथा हस्तौ तत्सर्पितमुदाहृतम्।।

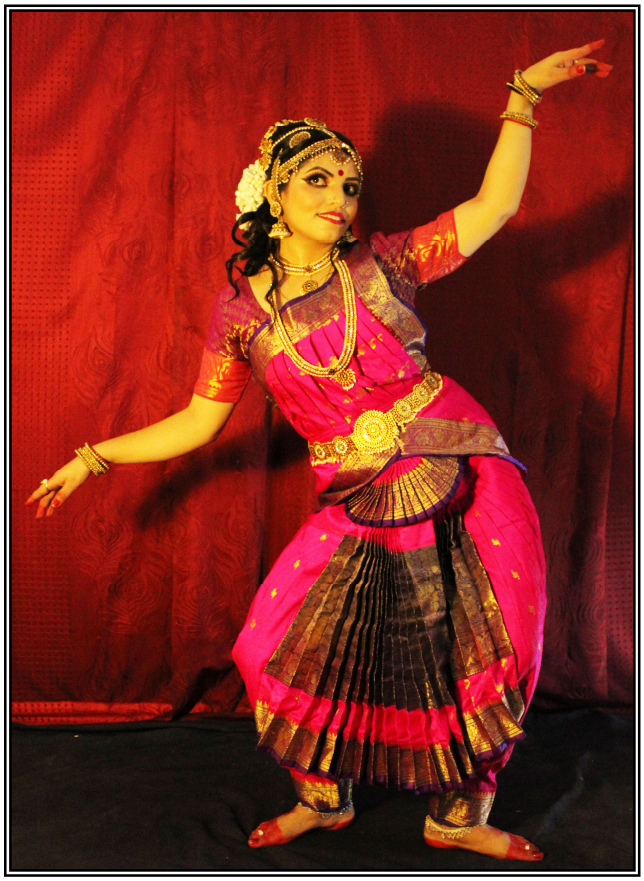

दोनों पैरों को अंचित अवस्था में रखकर बारी–बारी हटाया जाए और मस्तक परिवाहित मुद्रा में, दोनों हाथ रेचित मुद्रा में रहे तो सर्पित करण कहलाता है। यदि सर्पित नाम के अनुसार इस करण में हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए परन्तु हाथ की क्रिया सर्प जैसी रहे और दोनों पैरों को बारी–बारी एड़ी के द्वारा इस प्रकार हटाया जाए जिससे साँप की प्रतिक्रिया निकलकर बाहर आ सके, इस प्रकार भी सर्पित करण किया जा सकता है।

82. दण्डपाद

नूपुरं चरणं कृत्वा दण्डपादं प्रसारयेत्।
क्षिप्राविद्धकरं चैव दण्डपादं तदुच्यते।।

नूपुरचारी करने के बाद दण्डपाद चारी का प्रदर्शन किया जाए और हाथ को शीघ्रता से आविद्ध में रखा जाए तो दण्डपाद करण कहलाता है। यदि दण्डपाद करण को दर्शाने के लिए दण्डपाद चारी का प्रदर्शन किया जाए जिसमें दाहिने और बायें पार्श्व में जोर से पैर को हवा में ऊपर उठाते हुए नीचे रखे जाएँ या सामने की ओर केवल पैरों की क्रिया की जाए जब हस्त रेचित या अविध्य स्थिति में रहे तो इस करण को किया जा सकता है।

83. हरिणप्लुत

अतिक्रान्तक्रमं कृत्वा समुत्प्लुत्य निपातयेत्।

जङ्घाञ्चितोपरि क्षिप्ता तद्विद्याद्धरिणप्लुतम्।।

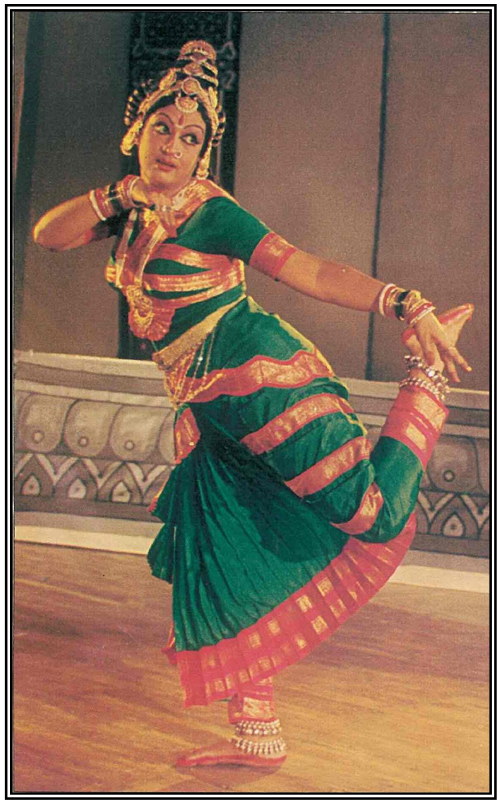

अतिक्रान्ता चारी को करने के पश्चात् एक उछाल लेकर फिर ठहरा जाए और एक जंघा सिकुड़कर उछाली जाए तो उसे हरिणप्लुत करण कहते हैं। यदि अतिक्रान्ता चारी को प्रदर्शित करें और उछल–उछल कर दूसरे पैर को आगे की तरफ लिया जाए, तथा कुंचित कर उसके ऊपर बैठा जाए तो वह हरिणप्लुत करण बन सकता है। जिसमें हाथों के किसी भी स्थिति का वर्णन नहीं बताया गया है। अतः हाथों से मृगशीर्ष और दूसरे हाथ में डोला का भी प्रयोग किया जा सकता है।

84. प्रेंखोलित

दोलापादक्रमं कृत्वा समुत्प्लुत्य निपातयेत्।

परिवृत्तं त्रिकं चैव तत्प्रेङ्खोलितमुच्यते।।

डोलाचारी करने के बाद एक उछाल लेकर गोल घूमकर फिर स्थित हो जाएँ तो प्रेंखोलित करण बनता है। इसमें भी हस्त प्रयोगों का उल्लेख नहीं मिलता है। प्राप्त नृत्य मूर्तियों को देखकर ऐसे भी प्रस्तुति की जा सकती है कि डोला पाद चारी के दौरान हस्तों को भी डोला हस्त अवस्था में डोलाते रखे जाएँ फिर शरीर को एक भ्रमरी देकर स्थिर हो जाए एक हाथ मुष्ठि तथा दूसरा उसके ऊपर डोला अवस्था में रखा जाए तो भी इस करण को किया जा सकता है।

85. नितम्ब

भुजावूर्ध्वविनिष्क्रान्तौ हस्तौ चाभिमुखाङ्गुली।
बद्धा चारी तथा चैव नितम्बे करणे भवेत्।।

दोनों हाथों को सिर के ऊपर की तरफ उठाया जाए तथा हाथों की ऊँगलियों को सामने की ओर रखते हुए बद्धाचारी प्रदर्शित की जाए तो नितम्बकरण बनता है। यदि इसे सिर के दाहिने तथा बायीं ओर क्रमशः अलपद्म हस्तों में घुमाव देकर बद्धाचारी प्रदर्शित की जाए तो भी नितम्ब करण को किया जा सकता है।

86. स्खलित

दोलापादक्रमं कृत्वा हस्तौ तदनुगावुभौ।
रेचितौ घूर्णितौ वापि स्खलितं करणं भवेत्।।

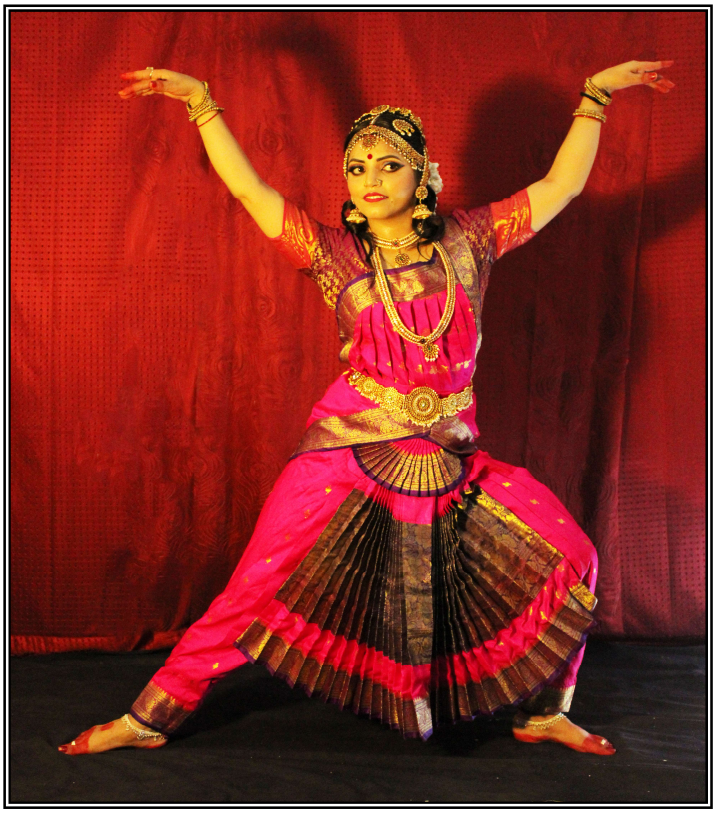

यदि पैरों से दोलापाद चारी का प्रदर्शन करें और हाथों को रेचित मुद्रा में रखते हुए बाद में अपनी कल्पना अथवा नाट्य प्रयोग के अनुसार चारों ओर घुमा दिया जाए तो स्खलित करण बनता है।

स्खलित करण की मूर्तियों में पाया गया है कि अन्त में एक हाथ वक्ष स्थल पर और दूसरा हाथ दोला स्थिति में दिखाई पड़ता है अथवा दोलापाद चारी का प्रदर्शन करके रेचित हस्त को बदलते हुए इस स्थिति में लाया जाए तो स्खलित करण बन सकता है।

87. करिहस्त

एको वक्ष:स्थितो हस्त: प्रोद्वेष्टिततलोऽपर:।

अञ्चितश्चरणश्चैव प्रयोज्य: करिहस्तके।।

बायें हाथ को वक्ष स्थल पर रखा जाए और दाहिने हाथ की हथेली उद्वेष्टित अथवा क्रिया वाली हो तथा पैर अंचित मुद्रा में रखा जाए तो उसे करिहस्त करण करते है।

मिलने वाली नृत्य मूर्तियाँ तथा पद्मा सुब्रह्मण्य जी द्वारा पुर्नगठित किए गए करण के अनुसार दोनों हस्त कान के पास त्रिपताक मुद्रा में हाथी के कान की क्रिया दिखाते हुए रखे जाएं तथा पैर को अंचित मुद्रा में रखा जाए तो उसे करिहस्त करण कहा जा सकता है।

88. प्रसर्पितक

एकस्तु रेचितो हस्तो लताख्यस्तु तथा परः।
प्रसर्पिततलौ पादौ प्रसर्पितकमेव तत्।।

एक हाथ रेचित और दूसरा हाथ लता मुद्रा में रखा जाए तथा पैर तल संचर अथवा पैर के तालु को तलसंचरण अर्थात् पैर के तालु को घिसते हुए आगे बढ़ाया जाए तो उसे प्रसर्पित करण कहते हैं।

89. सिंहविक्रीडित

अलातं च पुरःकृत्वा द्वितीयञ्च द्रुतक्रमम्।
हस्तौ पादानुगौ चापि सिंहविक्रीडिते स्मृतौ।।

अलात्चारी का प्रदर्शन करने के बाद दूसरे पैर से द्रुत गति में पाद संचालन करते हुए हाथों को भी पैरों की गति के अनुसार रखा जाए तो सिंहविक्रीडित बनता है, क्योंकि इस करण में हस्त मुद्रा का उल्लेख नहीं है। अतः इसमें उर्णनाभ हस्त का प्रयोग करते हुए सिंह के पाद की गति तथा सिंह के क्रियाकलाप को दर्शाते हुए अलातचारी का भी प्रयोग किया जाए तो वह सिंहविक्रीडित करण बन सकता है।

90. सिंहाकर्षितक

पृष्टप्रसर्पितः पादस्तथा हस्तौ निकुञ्चितौ।

पुनस्तथैव कर्तव्यौ सिंहाकर्षितके द्विजाः।

एक पैर को पीछे की ओर हटाया जाए, हाथ झुका हुआ रहे और शरीर एक गोल घुमाव ले जो सामने की ओर सिकुड़ा हुआ रहे तो इससे सिंहाकर्षित करण बन सकता है।

यदि पैर को पीछे की ओर खिसकाया जाए या प्रसर्पित किया जाए तथा हाथ को उर्णनाभ हस्त में निकुंचित अवस्था में रखा जाए अर्थात् सिकुड़ाकर रखा जाए और शरीर आगे की ओर झुका हुआ हो तो उसे सिंहाकर्षित करण कहा जा सकता है।

91. उद्वृत्त

आक्षिप्तहस्तमाक्षिप्तदेहमाक्षिप्तपादकम्।
उद्वृत्तगात्रमित्येतदुद्वृत्तं करणं स्मृतम्।।

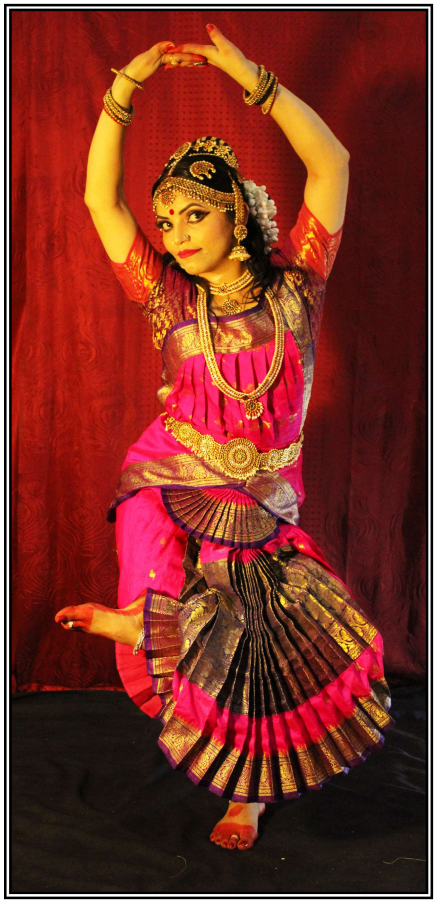

यदि हाथ, पैर और शरीर को ऊपर की ओर झटके से उछाला जाए तत्पश्चात् उद्वृत्त चारी में शरीर को स्थिर रखा जाए तो उद्वृत्त करण बनता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों में हस्त को कुंचित से रेचित हस्त में रखा जाए, पैरों से उद्वृत्त चारी करते हुए ऊपर की ओर उछाला जाए तो उद्वृत्त करण बन सकता है।

92. उपसृतक

आक्षिप्तश्चरणश्चैको हस्तौ तस्यैव वानुगौ।

आनतं तथा गात्रं तथोपसृतकं भवेत्।।

पैरों से आक्षिप्त चारी करने के बाद हाथों को उसी के अनुसार रखा जाए और शरीर को झुका लें तो इस करण को उपसृत करण कहते हैं।

93. तलसंघट्टित

दोलापादक्रमं कृत्वा तलसङ्घट्टितौ करौ।

रेचयेच्च करं वामं तलसङ्घट्टिते सदा।।

यदि दोला पाद चारी को प्रदर्शित करने के बाद दोनों हाथों के तलों को एक–दूसरे के साथ मलते हुए रखें फिर बाएं हाथ रेचित मुद्रा में रखें तो तलसंघट्टित करण बनता है।

इसमें हाथों के तल को मलने से प्रयोजन ऐसा दिखाई पड़ता है, जैसे दोनों हाथों से इस प्रकार ताली बजाना कि एक बार दाहिना हाथ ऊपर रहे तो दूसरी बार दायां हाथ ऊपर रहे और फिर रेचित मुद्रा में बायां हाथ रखा जाए तो तलसंघट्टित करण कहा जा सकता है।

94. जनित

एको वक्षःस्थितो हस्तो द्वितीयश्च प्रलम्बितः।

तलाग्रसंस्थितः पादो जनिते करणे भवेत्।।

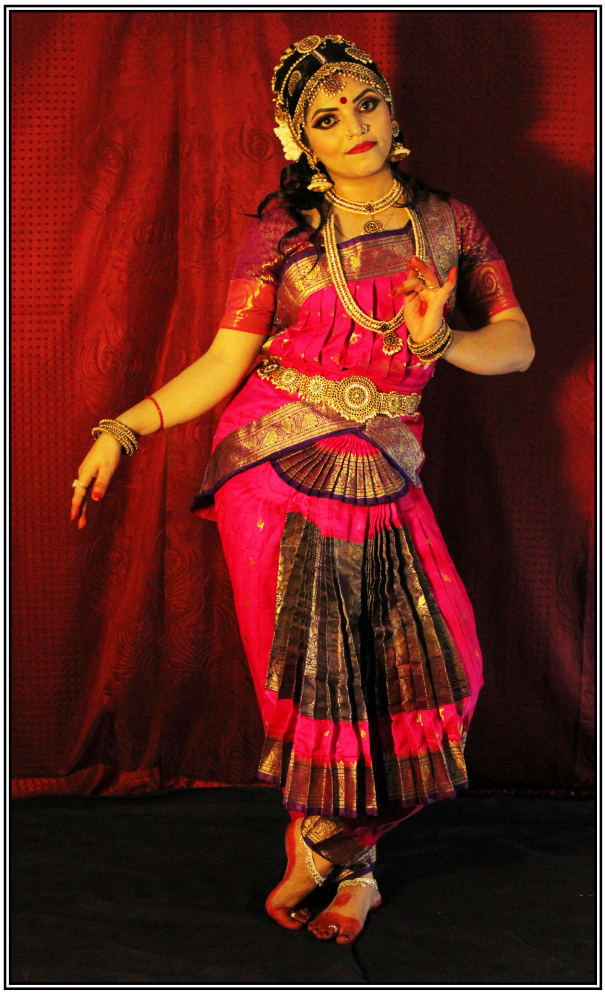

एक हाथ को वक्ष पर तथा दूसरे हाथ को झूलता हुआ रखकर एक पैर से अग्रतल संचर अथवा जनिताचारी का प्रदर्शन किया जाए तो जनितकरण बनता है।

95. अवहित्थक

जनितं करणं कृत्वा हस्तौ चाभिमुखाङ्गुली।

शनैनिपतितौ चैव ज्ञेयं तदवहित्थकम्।।

यदि जनित करण को प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथों की उंगलियों को एक–दूसरे के सामने रखकर धीरे–धीरे नीचे की ओर ले आएँ तो अवहित्थक करण बनता है। यहाँ उँगलियों का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु हस्त का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

अतः इसमें हस्त करणों का प्रयोग करते हुए उँगलियों को एक–दूसरे के सामने रखा जा सकता है, तथा हाथों को धीरे–धीरे नीचे की तरफ ले जाया जा सकता है, प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार हस्त वक्ष स्थल के सामने तक लाया जाया तो अवहित्थक करण बन सकता है।

96. निवेशं

करौ वक्ष:स्थितौ कार्यावुरो निर्भुग्नमेव च।

मण्डलस्थानकं चैव निवेशं करणं तु तत्।।

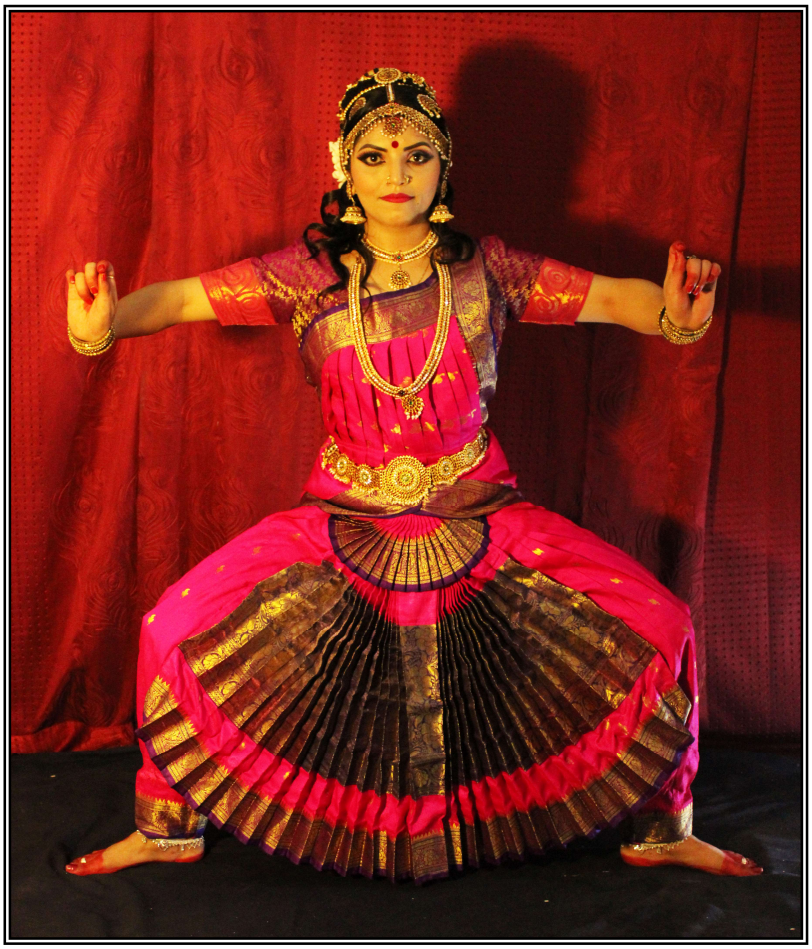

यदि दोनों हाथों को निर्भुग्न वक्ष स्थल पर रखा जाए और मण्डल स्थानक को प्रदर्शित किया जाए तो उसे निवेश करण कहते हैं। यहाँ हस्त के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं प्राप्त होते हैं।

अतः वक्ष के पास कटकामुख या कोई भी हस्त रखकर मण्डल स्थानक का प्रदर्शन किया जा सकता है। इससे निवेश करण बन सकता है।

97. एलकाक्रीडित

तलसञ्चरपादाभ्यामुत्प्लुत्य पतनं भवेत्।

संनतं वलितं गात्रमेलकाक्रीडितं तु तत्।।

तलसंचर अर्थात् अग्रतल संचर पाद के साथ एक उछाल लेकर भूमि पर वापस लौटे और शरीर को संकुचित करते हुए घुमाया जाए (दाहिने–बाएं) तो उसे एलकाक्रीडित करण कहते हैं, इस करण में हस्त के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं प्राप्त होता है।

अतः हाथों में कपित्थ या नृत्य प्रदर्शन की जरूरत के अनुसार हस्त का प्रयोग किया जा सकता है, जिसमें एलकाक्रीडित चारी का प्रयोग करना चाहिए।

98. उद्वृत्त

करमावृत्तकरणमूरुपृष्ठेऽञ्चितं न्यसेत्।

जङ्घाञ्चिता तथोद्वृत्ता ह्यूरूद्वृत्तं तु तद्भवेत्।।

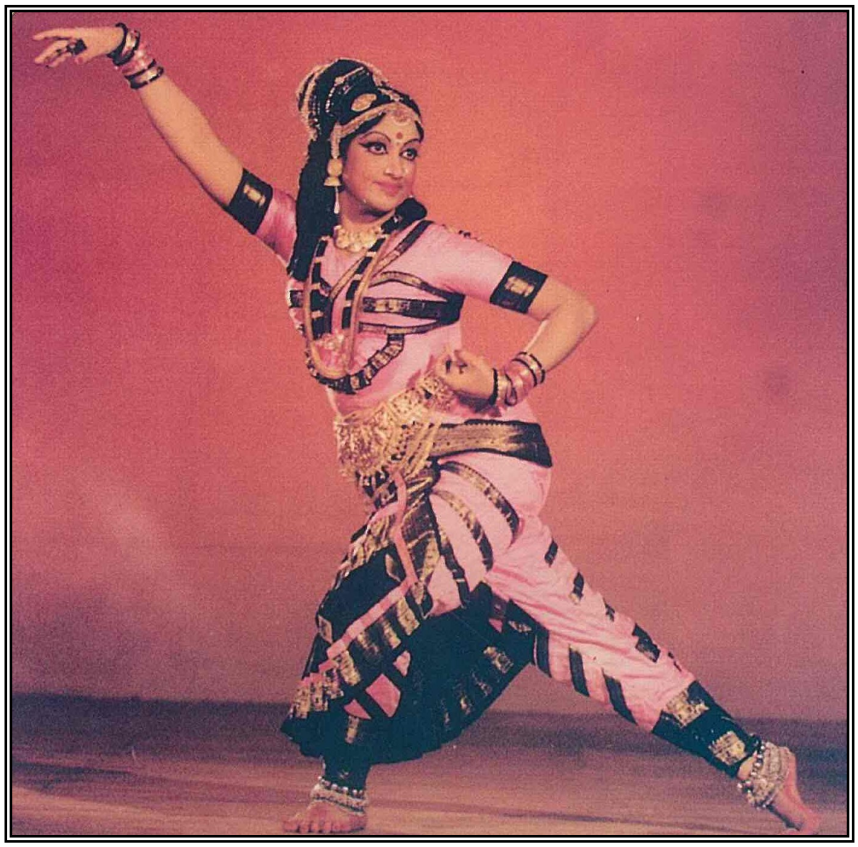

यदि हाथ को व्यावर्तित स्थिति में रखें फिर उसे झुकाकर उरू के पृष्ठ भाग अर्थात् पीछे की तरफ रखे और जंघा को अंचित तथा उरूद्वृत्त अवस्था में रखा जाए तो उसे उरूद्वृत्त करण कहते हैं।

यदि इस करण में हाथ को आवृत्त स्थिति में रखते हुए नीचे की ओर उरू के पिछली तरफ डोला हस्त की तरह रखा जाए और जंघा को अंचित और उद्वृत्त रखा जाए तो उरूद्वृत्त करण बन सकता है।

99. मदस्खलितक

करौ प्रलम्बितौ कार्यौ शिरश्च परिवाहितम्।

पादौ च वलिताविद्धौ मदस्खलितके द्विजाः।।

यदि दोनों हाथों को नीचे की ओर हिलाते हुए रखा जाए, मस्तक को परिवाहित मुद्रा में एवं दाहिने और बायें पैर को वलित अवस्था में रखा जाए और आविद्धा चारी का प्रदर्शन किया जाए तो उसे मदस्खलितक करण कहा जाता है।

यदि इस करण में मद में मत्त व्यक्ति को दिखाने के लिए किया जाता है।

100. विष्णुक्रान्त

पुरः प्रसारितः पादः कुञ्चितो गगनोन्मुखः।

करौ च रेचितौ यत्र विष्णुक्रान्तं तदुच्यते।।

यदि एक पैर आगे की ओर ऊपर उठाकर वापस लेते हुए सिकुड़ाए तथा दोनों हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए तो वह करण विष्णुक्रान्त करण कहलाता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के तथा डॉ0 पद्मा जी के पुनःस्वरूप के अनुसार इस करण को करने के लिए हाथ को रेचित मुद्रा में रखकर पैर को दण्ड के समान ऊपर उठाकर नीचे लाया जाए तो विष्णुक्रान्त बन सकता है।

101. सम्भ्रान्त

करमावर्तितं कृत्वा ह्यू रूपृष्ठे निकुञ्चयेत्।
उरूश्चैव तथाविद्धः सम्भ्रान्तं करणं तु तत्।।

यदि हाथ को व्यावर्तित अथवा आवर्त मुद्रा में उरू के पास सिकुड़ा हुआ रखें तथा उरू को आविद्धाचारी से युक्त रखा जाए तो उसे सम्भ्रान्त करण कहते हैं।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार उरू को आविद्धाचारी से युक्त रखा जाए और हाथ को व्यावर्तित हस्त करण के साथ उरू पर सिकोड़ाते हुए रखें तो सम्भ्रान्त बन सकता है।

102. विष्कम्भ

अपविद्धः करः सूच्या पादश्चैव निकुट्टितः।

वक्षःस्थश्च करो वामो विष्कम्भे करणै भवेत्।।

यदि हाथ अपविद्ध मुद्रा में रहे और पैरों से सूची चारी प्रयुक्त की जाए और निकुट्टित यानी कि झुकी हुई दशा को प्रदर्शित किया जाए तथा बायां हाथ वक्ष पर रखें तो वह विष्कम्भित करण कहलाता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार हाथ को जोड़ते हुए नृत्य के अनुरूप अपविद्ध मुद्रा में प्रदर्शित किया जाए और पैरों से सूचीचारी की जाए और शरीर एक तरफ झुका हुआ हो तो विष्कम्भ करण बन सकता है।

103. उद्घट्टित

पादावुद्घट्टितौ कार्यौ तलसङ्घट्टितौ करौ।
नतञ्च पार्श्वं कर्त्तव्यं बुधैरुद्घट्टिते सदा।।

यदि दोनों पैरों से उद्घट्टित चारी की जाए तथा हाथों को तलसंघट्टित मुद्रा में रखा जाए और पेट को झुका लें तो उद्घट्टित करण बनता है। (तलसंस्फुटित से सम्बन्ध है दोनों हाथों से ताली बजाना)

104. वृषभक्रीडित

प्रयुज्यालातकं पूर्वं हस्तौ चापि हि रेचयेत्।

कुञ्चितावञ्चितौ चैव वृषभक्रिडिते सदा।।

यदि अलातचारी को दर्शाकर दोनों हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए फिर उन्हें बारी–बारी कुंचित और अंचित मुद्रा में रखें तो उसे वृषभक्रीडित करण कहते हैं। (वृषभक्रीडित का अर्थ बैल की क्रीड़ा)

उसके अनुसार अलात्चारी को प्रदर्शित कर दोनों हाथों को रेचित मुद्रा में रखा जाए फिर उसे सिंघ दिखाते हुए कुंचित तथा अंचित मुद्रा में हाथों को रखा जाए तो वृषभक्रीडित करण बन सकता है।

105. लोलित

रेचितावञ्चितौ हस्तौ लोलितं वर्त्तितं शिरः।
उभयोः पार्श्वयोर्यत्र तल्लोलितमुदाहृतम्।।

यदि दोनों हाथ अंचित या रेचित मुद्रा में रखें जाए तथा मस्तक को लोलित तथा वर्तित क्रिया करते हुए रखा जाए तो लोलित करण बनता है।

रेचित अर्थात् दोनों हाथों को ऊपर की तरफ फैलाना और पूरे शरीर को मस्तक के साथ गोल घुमाव देना जिससे लोलित करण बन सकता है।

106. नागसर्पित

स्वस्तिकापसृतौ पादौ शिरश्च परिवाहितम्।
रेचितौ च तथा हस्तौ स्यातां नागापसर्पिते।।

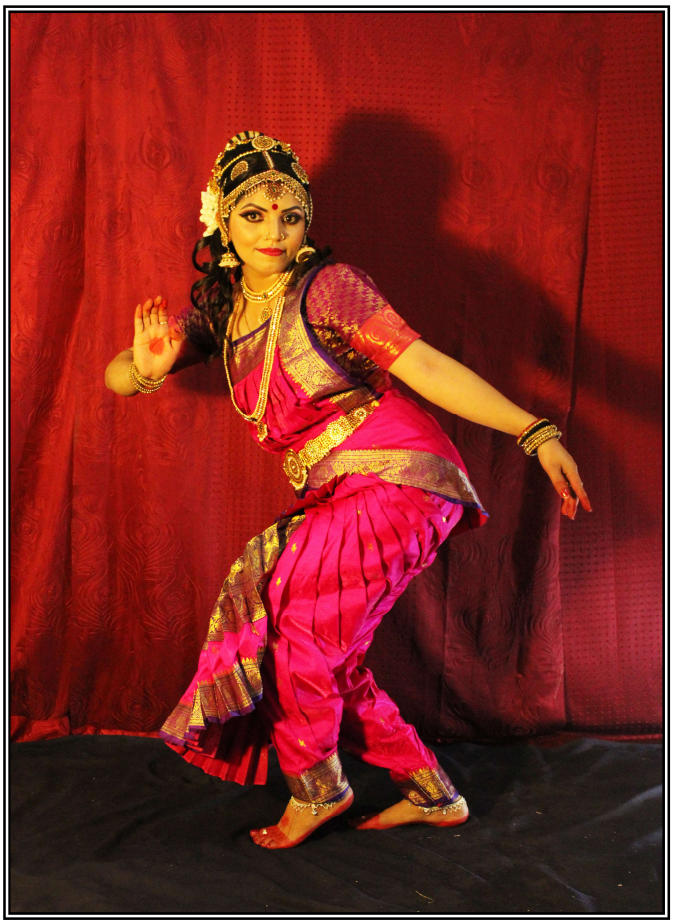

यदि दोनों पैरों को स्वस्तिक अवस्था में पीछे की ओर हटाया जाए और मस्तक तक परिवाहित मुद्रा में रहे तथा हाथ रेचित मुद्रा में रहे तब नागापसिर्पत करण बनता है।

107. शक्टास्य

निषण्णाङ्गस्तु चरणं प्रसार्य तलसञ्चरम्।
उद्वाहितमुरः कृत्वा शकटास्यं प्रयोजयेत्।।

यदि स्थिर बैठकर तल संचर चारी में पैर को फैलाए और वक्ष स्थल को उद्वाहित दशा में रखा जाए तो शकटास्य करण बनता है।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार भूमि पर पेट के बल स्थित होने के बाद दोनों पैरों को ऊपर उठाते हुए अपने मस्तिष्क से लगाया जाए और दोनों पैरों को अपने हाथों से पकड़ा जाए तो शक्टास्य करण बन सकता है, जिसमें वक्षस्थल उद्वाहित अवस्था में रहना चाहिए।

108. गंगावतरण

ऊर्ध्वाङ्गलितलौ पादौ त्रिपताकावधोमुखौ।

हस्तौ शिरस्सन्नतञ्च गङ्गावतरणन्त्विति।।

यदि दोनों पैर अपने तल और ऊँगलियों को ऊपर की ओर उठाते हुए रखें जाएं तथा दोनों हाथों को भूमि पर त्रिपताक मुद्रा में नीचे की ओर पंजे पर टिकाकर रखें तथा मस्तक को सन्नत अवस्था में रखा जाए तो उसे गंगावतरण करण कहते हैं।

प्राप्त नृत्य मूर्तियों के अनुसार कुहनी तक के दोनों हस्तों को भूमि पर टिकाकर पूरा शरीर ऊपर की ओर रहता है, जहाँ पैरों को कुंचित अवस्था में ऊपर की तरफ खींचा जाता है। अन्य मूर्तियों के अनुसार हाथों के पंजों को भूमि पर टिकाते हुए पूरे शरीर को ऊपर की ओर उठाया जाता है, दोनों ही स्थिति में मस्तक सन्नत अवस्था में रहता है। यह प्रकार शीर्षासन से मिलता–जुलता है।